ॐ

परिशिष्ट पर्व.

= अर्थात् =

ऐतिहासिक पुस्तक

दूसरा भाग

अनुवादक मुनि तिलकविजय
पंजाबी।

प्रकाशक

श्री आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी

अहमदावाद

श्री वीर सं. २४४४ श्री आत्म सं. २३

ईस्वीसन् १९१८

मूल्य आठ आने।

परिशिष्टपर्व

= अर्थात् =

ऐतिहासिक पुस्तक.

ॐ
સત્યપ્રકાશી આશ્રમ
પ્રકાશક
ડૉ મોહનલાલ
એમ. શાહ.
તત્વદર્શી
શ્રી તત્વજ્ઞાન મંદિર
અમદાવાદ.

भाग २ रा ।

॥ सतरहवाँ परिच्छेद ॥

उदायीकी राजप्रनाली और अकाल मृत्यु ।

अब श्री यशोभद्रसूरि अपने निर्मल यशसे दशों दिशाओंको धवलित करते हुए अनेक प्रकारके अभिग्रह छठ अठ्ठमकी तपस्यायें करते हुए श्री सर्वज्ञके कथन किये हुए धर्मरूप शीतल जलसे कर्म संतापसे तपे हुए भव्यजीवोंको मेघके समान शान्त करते विचरते हैं। श्री यशोभद्रसूरिके २ शिष्य चतुर्दश पूर्वकी विद्याके पारग थे, बड़े शिष्यका नाम 'भद्रबाहु' था और छोटेका 'संभूतविजय' उन दोनोंको श्रुत पारगामी देखकर श्री यशोभद्रसूरिने दोनोंको ही आ-

चार्यपद देकर विभूषित किया और आपने अपना निकट समय जान कर संलेखना कर ली। 'श्री यशोभद्रसूरि' पंडित मरणसे काल करके देवभूमिके भोगी जा बने। एक दिन श्री भद्रबाहु अपने शिष्य परिवार सहित विहार करते हुए राजगृह नगरमें पधारे, भगवानश्री भद्रबाहुकी धर्मदेशना सुनकर राजगृह नगरके रहनेवाले ४ चार वणिक् पुत्रोंने संसारको निःसार समझके उनके पास दीक्षा ग्रहण की, अब वे चारों जनें अनेक प्रकारके अभिग्रह आदि उग्र तपस्या करते हुए और वृद्ध मुनियोंकी सेवा भक्ति करते हुए गुरुमहाराजके साथही विचरते हैं, थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने गुरुमहाराजकी कृपासे बहुत कुछ श्रुतज्ञान उपार्जन किया, अब वे उपदेश करनेमें भी बड़े प्रवीण होगये, उन चारों जनोंने वैराग्यसे संसारको त्यागा था, अत एव उनके हृदयमें संयम ऐसा रम गया जैसे दूधमें पानी, इसी लिए दिनपर दिन उनके हृदयमें वैराग्यकी वृद्धि होती जाती है, गुरुमहाराज उन मुनियोंको देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं, क्यों न हों जिनके शिष्य समर्थ होकर विनीत और वैराग्यवान हों, उन गुरुओंका चित्त, उन शिष्योंकी ओर आपसे आप ही आकर्षित होजाता है। एक दिन गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर वे चारों ही महा मुनि एकले विहार करनेकी प्रतिमाको धारण कर अपनी जन्मभूमि राजगृह नगरमें पधारे, जिस समय वे चारों महा मुनि राजगृह नगरमें पधारे थे उस समय कमलिनियोंको भस्म करनेवाली और निधन जनोंकी दंत बीणा बजानेवाली हिमर्तु अपना प्रबल जोर दिखा रही थी, जाड़के मारे बिचारे बन्दर आदि वनचर पशु पहर दिन चढ़े तक भी अपने आश्रयको नहीं छोड़ते, वृक्षोंपर लतायें भस्म होने लगीं, ऐसे अवसरपर वे महात्मा दिनके तीसरे पहरमें नगरमें आहार पानीसे निमट कर वैभार पर्वतपर जाने लगे, वैभार पर्वत राजगृह नगरके समीप ही था तथापि समय हे

जानेसे राजगृह नगरसे जब वे क्रमसे विहार करक आगे पीछे जा रहे थे तब उन्हें रास्तेमें ही जाते जाते चतुर्थ पहर हो गया, उन चारों महात्माओंने यह अभिगृह धारण किया हुआ था कि दिनके तीसरे पहरमें ही आहार पानी करके विचरना और जहाँ दिनका चौथा पहर होजावे वहाँ ही कायोत्सर्ग मुद्रासे खड़े रहना, उनमेंसे जिसने प्रथम विहार किया था उसे वैभार पर्वतकी गुफाके समीप जाते तक चौथा पहर होगया इस लिए वह महात्मा तो वहाँ ही ध्यानस्थ हो खड़ा रहा, दूसरेको पर्वतके समीपमें पहुँचते तक चतुर्थ पहर होगया, वह भी वहाँ ही ध्यानस्थ होकर खड़ा रहा, तीसरा नगर और पर्वतके दर्म्यानमें जो उद्यान था वहाँ ही उसको वक्त होनेसे खड़ा रहना पड़ा, और चौथा अभी नगरसे बाहर निकला ही था इतनेमें ही उसे चौथा पहर शुरु होगया, अत एव वह महात्मा भी मौन धारण कर ध्यानस्थ हो वहाँ ही ठहर गया। सूर्य अस्त होजानेपर जाड़ेका जोर अधिकाधिक बढ़ने लगा, रात होनेपर सब लोग अपने अपने घरोंमें रजाइयें और गर्म वस्त्र ओ. ओढ़ कर सोने लगे, इधर उन महात्माओंका क्या हाल हुआ सो ध्यान देकर सुनिये। जो महात्मा पर्वतकी गुफाद्वारपर खड़ा था उसे किसी चीजका भी आधार न होनेसे जाड़ेने ऐसा पीड़ित किया कि वह रातके पहले ही पहरमें शरीरका त्याग कर स्वर्गातिथि होगया, जो पर्वतके समीपमें था उसे कुछ पहलेकी अपेक्षा कम जाड़ा लगनेसे वह दूसरे पहरमें मृत्युको प्राप्त हो स्वर्गातिथि बना, जो नगर और पर्वतके दर्म्यान उद्यानमें था, उसे पहले मुनियोंकी अपेक्षा जाड़ा कुछ कम लगा था, इस लिए वह तीसरे पहरमें देवलोकको प्राप्त हुआ और जो नगरके समीपमें ही खड़ा था उसे नगरकी उष्णताके कारण पहलके तीनों ही महात्माओंसे ठंडी कम लगी थी, अत एव वह रातके चौथ पहरमें स्वर्गभूमिको प्राप्त होगया।

उस रात्रिके चार पहरमें शीतसे पीड़ित हो वे चारों ही महात्मा अपने शरीरको त्याग कर क्रमसे परलोक सिधारे । इधर चंपापुरी नगरीमें राजा श्रेणिकके पुत्र 'कूणिक' की मृत्यु होनेपर उसका पुत्र (कूणिकका पुत्र) उदायी राजा राज्य करता था, पिताकी मृत्युके शोकसे 'उदायी' हमेशा उदासीन वृत्तिमें रहता था । राज्यकी अखंडाज्ञा प्रवर्तनेपर भी दुर्दिनमें सूर्यके समान राजा उदायीके चहरेपर तेजस्वीपना नहीं आता, राजाको हमेशा उदास देखकर मंत्री आदि प्रधान पुरुषोंने उदासीका कारण पूछा ।

राजा बोला–इस नगरमें जब मैं अपने पिताके क्रीड़ा स्थान देखता हूँ तब मेरा हृदय बहुत भर आता है और मुझे बड़ी व्यथा होती है, यह वही राजसभा और राजसिंहासन है, जहाँपर पिताजी मुझे अपनी गोदमें लेकर बैठते थे, जो जो पिताजीके बैठने, उठने, स्नान करने तथा भोजन करनेके स्थान हैं इन स्थानोंको देख कर मुझे शीघ्रही पिताजी याद आजाते हैं और पिताजीके याद आनेपर मेरा हृदय समुद्रके समान उछलने लगता है, मेरे हृदयमें पिताजी ऐसे वस गये हैं कि जब मैं राज्यचिन्ह देखता हूँ तब पानीमें चंद्रमाके प्रतिबिम्बके समान साक्षात् पिताजी देख पड़ते हैं और पिताजीके देखते हुए मैं राज्यचिन्होंको धारण करूँ यह सर्वथा अनुचित है और विनयव्रतका भंग होता है, इस राजभुवनमें रहकर मेरे हृदयसे शोक दूर होना यह बड़ा असंभव सा मालूम होता है । राजा उदायीके मुखसें इस प्रकार सुनकर स्वामिका हित इच्छनेवाले और राज्यकार्यमें दक्ष मंत्री वगैरह बोले–स्वामिन्! इष्टका वियोग होनेपर संसारमें किसे नहीं दुःख होता? और मातापिता सदाकाल किसके जीते रहते हैं? आपके पिताश्री 'कूणिक' महाराजाका भी उनके पिता श्रेणिकके मरनेपर यही हाल हुआ था, पर जब उनका चित्त राजगृह

नगरमें स्थिर न हुआ तब उन्होंने यह चंपानगरी वसाई थी और यहाँ रहकर अच्छी तरह राज्य पालन किया, इस लिए आपका भी यदि यहाँ रहकर शोक दूर न होता हो तो आप भी कहीं अच्छी जगह तलास कराकर नवीन नगर वसाओ और वहाँपर राजधानी रक्खो। यह बात सुनकर उदायी राजाने वैसा ही किया, नैमित्तियोंको बुलाकर आज्ञा ददी कि नवीन नगर वसानेके लिए कहीं अच्छी भूमि देखो, राजा उदायीकी आज्ञा पाकर नैमित्तिक लोग, श्रेष्ट प्रदेश देखनेके लिए जंगलमें निकल पड़े। बहुतसी जगह देखते देखते वे लोग गंगा नदीके किनारेपर एक रमणीय प्रदेशमें जा निकले, उन्होंने वहाँपर पुष्पोंसे लहलहाया और सघन छायावाला एक पाटलि वृक्ष देखा, उस प्रदेशमें उस रमणीय वृक्षकी शोभाको देखकर वे लोग बड़े प्रसन्न हुए, जब उन्होंने उस वृक्षकी ओर ध्यानपूर्वक देखा तो उस वृक्षके ऊपर एक चाषपक्षी मुँह फाड़कर बैठा है और कीड़े आपसे आप उसके मुँहमें आकर पड़ते हैं, यह दृश्य देखकर उन लोगोंने विचार किया कि जिस तरह इस पक्षीके मुँहमें कीड़े स्वयमेव आकर पड़ते हैं वैसे ही इस जगह नगर वसानेपर धर्मात्मा राजाको स्वयमेव ही संपदायें प्राप्त होंगी, सब नैमित्तिकोंने मिलकर यही निर्णय किया, इस लिए उन्होंने राजा उदायीके पास जाकर कहा—राजन्! हमने बहुतसे स्थान देखे मगर गंगा नदीके किनारे एक ऐसा रमणीय स्थान है यदि वहाँपर नगर वसाया जाय तो प्रजाको भी सर्व प्रकारका सुख और राज्यकी वृद्धि हो। उन नैमित्तिकोंमेंसे एक वृद्ध नैमित्तिक बोला—राजन्! जिस पाटलि वृक्षके देखनेसे हम लोग इस जगहकी प्रशंसा कर रहे हैं यह पाटलि वृक्ष कोई सामान्य नहीं है किन्तु प्रथम एक ज्ञानी महात्माने इस वृक्षका प्रभाव कथन किया है, सो आपको मैं वह बात सुनाता हूँ, आप सावधान तया सुनें। इसी

देशमें मथुरा नामकी दो नगरी थीं। एक उत्तर मथुरा और दूसरी दक्षिण, वे दोनों ही नगरी ऐश्वर्य सौन्दर्यादिसे अमरावतीकी समानताको धारण करती थीं, उत्तर मथुरामें ऐश्वर्यशाली एक देवदत्त नामका वणिक पुत्र रहता था, एक दिन 'देवदत्त' यात्राके निमित्त दक्षिण मथुरामें गया, दक्षिण मथुरामें भी 'जयसिंह' नामका एक वणिक पुत्र रहता था, दक्षिण मथुरामें 'देवदत्त' को बहुतसे दिन व्यतीत होजानेपर 'जयसिंह' के साथ उसकी बड़ी गाढ़ी मित्रता होगई, 'देवदत्त' नित्य प्रति जयसिंहके घरपे आने जाने लगा। जयसिंहके देवाङ्गनाके समान अन्निका नामकी एक कुमारी बहिन थी। एक दिन 'जयसिंह' ने अपनी बहिन अन्निकासे कहा–बहिन! आज अच्छी तरहसे रसोई बनाना, मैने अपने मित्रको न्यौता दिया है वह मेरे साथही आज जीमनेको आयगा, अन्निकाने भाईके कहे मुजब ही बड़ी उम्दा अठारे प्रकारके व्यंजनों सहित रसोई बनाई, टइम होनेपर जयसिंह 'देवदत्त' को बुला लाया और दोनों भाईके समान थाल लेकर अपने अपने आसनपर बैठ गये, अन्निकाने उस दिन वस्त्राभूषण अच्छे धारण किये हुवे थे. उसने अपने हाथसे ही जयसिंह तथा उसके मित्र 'देवदत्त' के थालमें भोजन परोसा. जब वे भोजन करने लगे तब 'अन्निका' मक्खियाँ उड़ानेके लिए तथा पवन करनेके लिए उन्हें पंखा करने लगी, जब अन्निका पंखा कर रही थी तब उसके हाथोंके कंकणोंमें घूँघरु झणक झणक बजते थे, अत एव देवदत्तका मन भोजनकी तर्फसे उछट कर उधर ही जालगा, यहाँ तक कि 'अन्निका' का रूप देख विकारके विवश होकर भोजनके स्वादको भी 'देवदत्त' न जान सका, परन्तु मित्रतामें किसी प्रकारका फर्क न आ जाय, इस लिए वह अपने मनोगत भावको गोपकर स्थिर होकर जीमता रहा, भोजन किये बाद 'देवदत्त' अपने मित्र जयसिंहसे रुकशद पाकर अपने मकानपर

चला गया, मगर उसका मनमयूर वहाँ ही नृत्य करता रहा, अतएव उसने दूसरे ही दिन अपने एक नौकरको जयसिंहके पास अन्निकाके साथ विवाह संबंधके लिए भेजा, उस वृद्ध नौकरने बड़े गंभीर वचनोंसे जयसिंहसे कहा—सुनो भाई तुमारी बहिन इस वक्त विवाहके योग्य हुई है और तुमने कहीं न कहीं तो इसका विवाह करना ही है। इस लिए हमारे स्वामी देवदत्तके साथ ही विवाह संबंध किया जाय तो ठीक हो, क्योंकि उनसे आप अच्छी तरह परिचित हैं। वरके गुण देखकर ही कन्यापक्षी कन्याका विवाह संबंध किया करते हैं, आपको तो यह भी किसीसे पूछनेकी जरुरत नहीं, क्योंकि आपकी घने दिनसे उनके साथ मित्रता है। इस लिए आपको तो सब बातोंका अनुभव है विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। यह सुनकर जयसिंह बोला—देवदत्तको मैं अच्छी तरह जानता हूँ वह सर्व कलाओंको जाननेवाला सुकुलीन, सुरूपवान् और गुणवान् है, उसके अन्दर वरके सब ही गुण हैं मगर विदेशी होनेके कारण ही मेरा मन झिझकता है, यदि यह सदाके लिए मेरे मकानपर रहना मंजूर करे तो खुशीसे मैं अपनी बहिनका विवाह संबंध उसके साथ कर सकता हूँ, परन्तु यह तो एक दिन न एक दिन विवाह किये बाद अपने घरको चला जायगा। लक्ष्मीके समान जो मेरी प्राण प्यारी बहिन है इसे मैं किस तरह उसके साथ भेज सकता हूँ? और पीछेसे मेरा क्या हाल? खैर यदि वह ताजिन्दगी मेरे घर न रह सके तो जब तक मेरी बहिनको कोई सन्तान न हो तब तक तो अवश्य ही मेरे घरपर रहे, यदि वह इतना करनेको समर्थ हो तो मैं उसके साथ 'अन्निका' का विवाह कर सकता हूँ अन्यथा नहीं। यह बात देवदत्तको मालूम हुई जब तक 'अन्निका' के कोई सन्तान न हो तब तक उसने जयसिंहके घरपर रहना मंजूर कर लिया, जयसिंहने भी

बड़ी धूमधामसे अपनी बहिन 'अग्निका' का विवाह अच्छा मुहूर्त देख कर देवदत्तके साथ कर दिया, अब 'अग्निका' के साथ सांसारिक सुखका अनुभव करता हुआ जयसिंहके घरपर 'देवदत्त' सानन्द अपने समयको व्यतीत करता है, अग्निकाके प्रेमतन्तुओंसे बँधे हुए देवदत्तको जब बहुतसा समय दक्षिण मथुरामें बीत गया तब एक दिन उत्तर मथुरासे देवदत्तके मातापिताओंका पत्र आया, उस पत्रको वाँचते समय देवदत्तकी आँखोंमेंसे अश्रुधारा बहने लगी मगर 'अग्निका' को इस बातकी खबर न पड़ जाय इस भयसे वह शीघ्र ही रुमालसे अपनी आँखे पूँछ लेता था, तो भी अग्निकाने अपने पति देवदत्तके चेहरेको देख कर यह निश्चय कर लिया था कि आज कुछ न कुछ प्राणप्यारे पतिको दुःख अवश्य है जिससे इनका चेहरा इतना उदास होरहा है।

इस पत्रमें अवश्य कोई खेदकी बात लिखी है और यह पत्र इनके किसी गाढ़े संबंधिका होना चाहिये, ' 'देवदत्त' पत्रको वाँच कर मन ही मन विचारने लगा—धिक्कार है मुझ पापीको जो विषयोंमें आसक्त होकर वृद्धावस्थामें अपने मातापिताओंको छोड़ कर परदेशमें पड़ा हूँ । मैं विषयसुख समुद्रमें मग्न होरहा हूँ और मेरे जन्म प्रदाताओंकी यह दशा? हा मैंने परमोपकारि मातापिताओंको भुला दिया? क्या करूँ, किस तरह जाऊँ, पत्नीको अभी तक सन्तान नहीं हुई। मैंने पहले जबान देदी है कि जब तक पत्नीको सन्तान नहीं हो तब तक यहाँ ही रहना, अब क्या करूँ, इधर तो व्याघ्र और उधर अगाध जल पूरवाली नदी, यह हाल होरहा है । इधर तो मैं अपनी जबान रस्सीसे जकड़ा हुआ हूँ और उधर मातापिताओंकी यह दशा हो रही है, क्या किया जाय, किससे कहूँ। देवदत्तको यह विचार करते हुए फिर उसकी आँखें भर आईं, अग्निका इस प्रकार अपने पतिको

देख कर वह आप भी दुःखसागरमें गोते लगाने लगी और अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे कहने लगी—स्वामिन्! आपकी आज दिनमें चंद्रमाके समान यह क्या दशा होगई? यह पत्र किसका है? जिसने आपकी आँखोंसे अश्रु निकाल दिये, मैं तो यह अनुमान करती हूँ कि ये अश्रु हर्षके नहीं मालूम होते, ये अश्रु तो खेदके देख पड़ते हैं, अत एव आप जल्दी फरमाओ, इसमें क्या रहस्य है यदि इसमें दुखी होनेका समाचार हो तो मैं भी आपके दुःखमें हिस्सा लूँ। यह सुन कर देवदत्तने नीचा मुँह कर लिया और 'अन्निका' को कुछ भी जवाब न दिया, अन्निकाने देवदत्तके हाथसे स्वयं पत्र ले लिया और उस पत्रको बाँच कर पतिके दुःखका कारण समझ गई। पाठकोंके दिलमें यह बात खटकती होगी कि न जाने उस पत्रमें क्या लिखा था जिससे देवदत्तको इतना खेद हुआ और वह अपने मातापिताकी दशापर इतना खयाल करने लगा यह शंका दूर करनेके लिए जो कुछ पत्रमें लिखा था वह हम नीचे लिखते हैं—

आवां हि चक्षुर्विकलौ, चतुरिन्द्रियतां गतौ।
जराजर्जर सर्वाङ्गा,—वासन्नयमशासनौ ॥ १ ॥
आयुष्मन्यदि जीवन्तौ कुलीनस्त्वं दिदृक्षसे।
तदेह्युद्वापय दृशावावयो रुदतोः सतोः ॥ २ ॥ युग्मम्।

अर्थात्—तेरे वियोगसे रोते रोते हम चक्षु विहीन हो चौरिन्द्रियपनेको प्राप्त होगये और बुढ़ापेसे निर्बल होकर यमराजके शासनके नजीक आये हुए हैं। हे आयुष्मन्! हे कुलीन्! यदि तू हमें जीते हुओंको देखना चाहता है तो शीघ्र आकर हमारे नेत्रोंको शान्त कर। 'अन्निका' पत्रको बाँच कर बोली—स्वामिन्! आप जरासी बातपर इतने शोकातुर क्यों होते हो? आप इस बातका बिलकुल फिक्र मत करो मैं अभी जाकर अपने भाईको समझा देती हूँ। आपका मनोरथ पूर्ण हो

जायगा, यह कह कर अग्निका शीघ्रही अपने कमरेमेंसे निकल कर अपने भाई जयसिंहके पास गई और कुछ क्रोधसे त्यौरी चढ़ा कर बोली-अरे भाई! आपने विवेकी होकर यह क्या रचना रची? आपका बहनोई अपने कुटुम्बके वियोगसे दुखी होरहा है और मैं भी अपने सासु-सुसरेका दर्शन करना चाहती हूँ, इस लिए आप उन्हें उनके घर जानेकी आज्ञा दो और मैं तो उनके पीछे ही हूँ, इस लिए मुझे तो अवश्य ही जाना पड़ेगा कदापि वे अपनी जुबानसे बँधे हुवे रह भी जायँगे परन्तु मैं तो अवश्य ही अपने सासु-सुसरेको नमस्कार करनेको जाऊँगी। भला जब मैं अकेली ही अपने सुसरेके घर चली जाऊँगी तब क्या रहेगा?। जब जयसिंहने अग्निकाके ऐसे सक्त वचन सुने तब उसने अपने बहनोइको उसके घर जानेकी रजा देदी। देवदत्तने वहाँसे उत्तर मथुराको प्रयाण कर दिया, जैसे चन्द्रमाके पीछे चाँदनी चलती है वैसे ही अग्निका भी अपने प्राणप्रिय पतिके पीछे चल पड़ी, जब अग्निका और देवदत्तने उत्तर मथुराको प्रयाण किया था उस समय अग्निका आसन्न प्रसूतवती गर्भवाली थी, अत एव उसे मार्गमें ही जाते हुए सर्व लक्षणों सहित चन्द्रमाके समान सौम्यताको धारण करनेवाला पुत्र पैदा हुआ। उस पुत्रको देख कर अग्निका तथा देवदत्तके हृदयमें हर्षका पार न रहा, देवदत्तने विचारा कि इस पुत्रका नाम घर चल कर अपने वृद्ध मातापिताओंसे रखायँगे, इस लिए उन्होंने रास्तेमें उस पुत्रका नाम न रक्खा, परन्तु साथमें जो बहुतसे नौकर नौकरानियें थीं वे उस बालकको खिलाते समय अग्निका पुत्र, इस नामसे पुकारने लगीं। देवदत्त कुशलतापूर्वक अपनी नगरीमें जा पहुँचा, उसने अपने मातापिताको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके अपने पुत्रको अपने पिताकी गोदमें बैठा दिया और कहा कि पिताजी आपकी कृपासे परदेशमें जाकर आपको नजराना करनेके

लिए मैंने यह उपार्जन किया है । यह आपकी पुत्रवधू खड़ी है और इसकी कुक्षिसे पैदा हुआ यह आपका पौत्र है । यह सुन कर देवदत्तके मातापिताके हृदयमें हर्षका पार न रहा, उन्होंने पौत्र सहित पुत्रके मस्तकका चुम्बन किया और तुम चिरायुवाले हो वारंवार यह आशीर्वाद दिया, देवदत्तके मातापिताने उस बालकका नाम सन्धीरण रक्खा परन्तु मार्ग सहचारी लोगोंसे जो पहले उसका नाम 'अग्निका पुत्र' कल्पित किया गया था वही नाम लोकमें प्रसिद्ध हुआ । उस बालककी अच्छी तरहसे लालना पालना होने लगी, कुटुम्बके सब ही लोग उसे बड़े प्रेमसे रखते हैं । कुछ वर्षोंको व्यतीत कर बाल्यावस्थाको उलंघ कर वह 'अग्निका पुत्र' युवावस्थाको प्राप्त हुआ । 'अग्निका पुत्र' बचपनसे ही बड़ा सुसील और जितेन्द्रीय था इतना ही नहीं परन्तु कभी कभी वह संसारकी असारता पर भी विचार किया करता था, वह विचारता था कि संसारमें मनुष्य जिन वस्तुओंको अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके प्राप्त करता है वे वस्तुयें भी नष्ट होती देख पड़ती हैं इसी तरह किसी न किसी दिन यह विनश्वर शरीर भी नष्ट हो जायगा, अत एव परलोकके लिए इस शरीरसे कुछ न कुछ कमाई अवश्य करनी चाहिये । इस प्रकारके विचारोंसे उसका हृदय सदा काल स्वच्छ और पवित्र रहता था, इन विचारों तथा इस वैराग्यका अन्तिम परिणाम यह निकला कि एक दिन योबन अवस्थामें ही विरक्तात्मा उस अग्निका पुत्रने अपने मातापिताकी आज्ञा लेकर संसारको निःसार समझ कर श्री जयसिंहाचार्य महाराजके पास सारसागरको तरनेके लिए नावके समान दीक्षा ग्रहण कर ली, 'अग्निका पुत्र' गुरुमहाराजके चरणोंमें दीक्षा ग्रहण करके खड्गधाराके समान तीक्ष्ण निरतिचार चारित्रसे अपने संचित कर्मरूप काँटोंको चूरने लगा, थोड़े ही समयमें उन महात्माओंने तीव्र तपरूपी अग्निसे

अपने दारुण कर्मरूप मलको भस्म करके अपनी आत्माको ऐसी विमल कर ली कि जैसे अग्निसे तपाया हुआ सुवर्ण होजाता है, 'अन्निका पुत्र' जब श्रुतपारग और ज्ञानदर्शन चारित्रमें परिणत होगये तब उन्हें गुरुमहाराजने योग्य समझ कर आचार्यपदसे विभूषित किया। एक दिन श्री अन्निकापुत्राचार्य सपरिवार क्रमसे विहार करते हुए गंगा नदीके तटपर 'पुष्पभद्र' नामा नगरमें पधारे।

उस नगरमें मीनकेतुके समान 'पुष्पकेतु' नामका राजा राज्य करता था, रतिके समान पुष्पवती नामकी उसकी रानी थी, पुष्पवतीकी कुक्षिसे एक जोड़ा पैदा हुआ था, उसमें एक लड़का और एक लड़की थी। लड़केका नाम 'पुष्पचूल' और लड़कीका 'पुष्पचूला था। वे दोनों ही बालक वृक्षकी लताके समान वृद्धिको प्राप्त होते थे और उन दोनोंमें इतना तो प्रेम था कि वे कभी भी एक दूसरेसे घड़ीभरके लिये भी जुदे नहीं पड़ते थे, उन दोनोंमें असीम प्रेम देख कर राजाने मन ही मन विचारा—अहो! इन बच्चोंका परस्पर कैसा अनहद प्रेम है? यदि मैं इनका अन्यत्र विवाह संबन्ध करके वियोग कराऊँगा तो अवश्यमेव ये प्रियवियोग दुःखको न सहन करके अपने प्राणोंको त्याग देंगे और मैं भी इन बच्चोंके वियोगको सहन नहीं कर सकता हूँ, अत एव यही उचित है कि इन दोनोंको परस्पर ही विवाह संबन्ध करा कर अपने घरपर ही रखना चाहिये। राजाने यह विचार करके एक दिन राजसभामें मंत्री सामन्तों और मित्रोंसे यह प्रश्न किया कि जो अन्तेउरमें रत्न पैदा हो तो उसका मालिक कौन? राजदरबारमें बहुतसे आदमी बैठे हुवे थे और बड़े बड़े विद्वान् भी थे मगर राजाके इस प्रश्नका आशय कोई भी न समझ सका, अत एव सबकी जबानसे यही निकला कि राजन्! जब देशमें पैदा हुए रत्नका भी राजा ही मालिक होता है तब फिर राजकुलमें

पैदा हुए रत्नका तो स्वयमेव ही राजा स्वामी है, राजाने उन बिचारे अनजान आदमियोंके वचनका आलम्बन लेकर और स्नेहमें कृत्या-कृत्यको भूल कर अपने पुत्र–पुत्री पुष्पचूल और पुष्पचूलाका परस्पर विवाह संबन्ध करा दिया, 'पुष्पकेतु' की रानी पुष्पवती श्राविका थी (यानी जैनधर्मको माननेवाली थी,) अत एव वह कृत्याकृत्यको जानती थी, उसने राजाको बहुत मना किया कि आप यह अनुचित कार्य न करो परन्तु राजाने एक भी न सुनी और उस अकृत्यको करके अपनी आत्माको पापरूप कीचड़से लपेट ही लिया, अब वे दम्पती नितान्त रागवान परस्पर गृहस्थ धर्मका अनुभव करने लगे, कुछ दिनोंके बाद राजा 'पुष्पकेतु' तो परलोका अतिथि होगया, पीछे रानी पुष्पवतीने अकृत्यसे निवारण करनेके लिये 'पुष्पचूला' और 'पुष्पचूल' को बहुत ही समझाया मगर 'पुष्पचूल' को उस वक्त राज्याभिषेक हो चुका था वह सर्व कार्योंमें स्वतंत्र था और पुष्पचूलाके साथ उसका अत्यन्त राग था, इसीसे उसने अपनी माता पुष्पवतीका कहना अनसुना सा कर दिया, पुष्पचूलने जब अपनी माताका कहा न माना तब उससे वह अकृत्य देखा न गया, अत एव पुष्पवतीको संसारकी असारतापे घृणा पैदा हुई, उसने किसी जैन साध्वीके पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली और घोर तपस्यायें आचरती हुई विधिपूर्वक देह त्याग करके देवलोकमें देवपने जा पैदा हुई, क्योंकि जैन दीक्षा यदि यथार्थरूपसे निरतिचारसे पाली जाय तो मोक्षके ही लिए होती है वरन देवलोक तो कहीं गया ही नहीं। पुष्पवतीके जीव देवताने अवधिज्ञानसे अपने पुत्र–पुत्रीको अकृत्यमें जुड़े देख कर मनमें विचार किया कि अहो! ये मेरे पूर्वजन्मके पुत्र–पुत्री इन अकृत्योंसे घोर नरककी वेदनाको सहेंगे? अब मैं कोई ऐसा उपाय करूँ जिससे ये बिचारे दुर्ग-

तिके भागी न बनें।

यह विचार कर उस देवताने 'पुष्पचूला' को स्वप्नमें नरकका दिखाव दिखाना शुरू किया, नरकमें दुष्कर्मके प्रभावसे जो पैदा हुए जीव हैं उनका परस्पर छेदन भेदनादि दुस्सह्य दु:ख देख कर रानी 'पुष्पचूला' वनमें आग लगनेपर मृगीके समान, परपुरुषके हाथका संस्पर्श होनेसे सतीके समान और संयममें अतिचार लगनेपर सुसाध्वीके समान एकदम भड़क उठी और उसका शरीर प्रचण्ड पवनसे लताके समान काँपने लगा, नारकी जीवके समान ही डरती हुई पुष्पचूलाने वह स्वप्नका वृत्तान्त अपने पति पुष्पचूलको कह सुनाया और बोली—स्वामिन्! इस प्रकारका स्वप्न देखनेसे मुझे अपने हकमें सुखोंकी आशा नहीं अवश्य इस अनिष्ट स्वप्नसे मुझे अनिष्ट ही फल होगा। यह सुन कर राजा पुष्पचूल भी चिन्ता समुद्रमें गोते खाने लगा परन्तु हो क्या सकता था, प्रातःकाल होनेपर पुष्पचूलाके हितेच्छु पुष्पचूलने शान्ति आदि कर्म कराये, पुष्पवतीका जीव देवता पुष्पचूलाके हितकी इच्छासे रातको रोजकी रोज भयानक नरकके दिखाव उसे स्वप्नमें दिखाने लगा। एक दिन राजाने राजसभामें नगरके सब ही बड़े बड़े विद्वानोंको बुलवाया और उनसे कहा कि तुम लोग नरकका वरनन करो, नरकका क्या स्वरूप है? यह सुन कर विद्वान ब्राह्मण बोले—राजन्! संसारमें जो दरिद्रता परतंत्रता और नाना प्रकारके दुःख हैं यही नरक है, नरक कोई इससे भिन्न नहीं है। यह सुन कर राजाके पास बैठी हुई रानीने ऐसा मुँह बना लिया जैसे दुर्गन्धकी बदबूसे किसी आदमीका होजाता है, ये सब मिथ्या वादी हैं रानीने राजासे यह कह कर उन्हें वहाँसे विसर्जन कराया, उसी नगरमें अन्निका पुत्र सूरीश्वर भी विराजमान थे, अत एव राजाने उन्हें भी बुलवाया और रानीको पास बैठाके उनसे भी नरकका

स्वरूप पूछा, अग्निकापुत्रसूरिने यथार्थ वैसा ही नरकका स्वरूप वरनन किया जैसा कि पुष्पचूलाने स्वप्नमें देखा था, आचार्य महाराजसे नरकका यथार्थ स्वरूप सुन कर पुष्पचूला हाथ जोड़ कर बोली—भगवन्! क्या आपने भी मेरे सा स्वप्न देखा है? जो आप यथार्थ वैसा ही स्वरूप कथन करते हैं जैसा कि मैने स्वप्नमें देखा है। सूरिजी महाराज बोले—भद्रे! विना ही स्वप्न देखे संसारमें ऐसा कोई ज्ञेय पदार्थ नहीं है जो सर्वज्ञ देवके कथन किये शास्त्रसे न जाना जाय, पुष्पचूला बोली—भगवन्! किस कर्मसे जीव इस घोराति घोर नरकके दुःखको प्राप्त करते हैं? आचार्य महाराज बोले—महारम्भ परिग्रह धारण करनेसे, पंचेन्द्रिय जीवका घात करनेसे और धर्मगुरुकी अवज्ञा करनेसे जीवोंको नरकमें जाना पड़ता है और वहाँपर दुःसह्य नरक यातनाओंका अनुभव करना पड़ता है। 'अग्निकापुत्राचार्य' नरकका स्वरूप कथन करके अपने स्थानपर चले गये, देवताने पहलेसे विपरीत पुष्पचूलाको स्वप्नमें स्वर्गका दिखाव दिखलाना शुरू किया अर्थात् स्वर्गके सुखोंका स्वप्नमें साक्षातकार कर दिखाया, रानी पुष्पचूला स्वप्न देख कर यकायक जाग उठी और राजा पुष्पचूलको स्वप्नका सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, राजाने फिर उन्हीं विद्वान ब्राह्मणोंको बुलवा कर स्वर्गका स्वरूप पूछा, उनमेंसे एक आदमी बोला—राजन्! प्रिय जनका जो संयोग है यही स्वर्ग है इससे भिन्न कोई स्वर्ग नहीं दूसरा बोला—राजन्! संसारमें जो जो सुखके कारण हैं उन्हें ही स्वर्ग समझना चाहिये, यह सुन कर रानी पुष्पचूलाने पूर्वकी तरह मुँह मरोड़ कर कहा—ये सब मिथ्या बोल रहे हैं, जैसा मैने स्वप्नमें स्वर्गका स्वरूप देखा है उससे बिलकुल ही विपरीत लोलते हैं इन्हें कुछ नहीं आता, अत एव यहाँसे विसर्जन करो, राजाने उन्हें सभासे विसर्जन किया और श्री अग्निकापुत्र सूरिजीको बुलवा कर

स्वर्गका स्वरूप पूछा आचार्य महाराजने स्वर्गका यथातथ्य स्वरूप कह सुनाया, सुन कर रानी बड़ी ही प्रसन्न हुई और विस्मित हो कर पूर्व-वत् बोली-भगवन्! क्या आपने भी मेरे समान ही रात्रिमें स्वप्न देखा है? जो आप वैसा ही स्वर्गका स्वरूप कथन करते हो जैसा कि मैंने स्वप्नमें देखा है, आचार्य महाराज बोले-भद्रे! हमने स्वप्न नहीं देखा परन्तु जैनागम सुधाका पान करनेवाले महात्मा लोग स्वर्गापवर्गके सुख तथा स्वरूपको भली भाँति जानते हैं, संसारमें कोई भी ऐसा ज्ञेय पदार्थ नहीं जिसे जैनागमसे न जान सकें परन्तु गुरुगम और बुद्धि होनी चाहिये, यह आश्चर्य देख कर रानी पुष्पचूलाको जैनागमपे श्रद्धा हो गई और वह हाथ जोड़ कर आचार्य महाराजसे बोली-भगवन्! जैसे स्वर्गके सुख मैंने स्वप्नमें देखे हैं वे किस कर्मके प्रभावसे जीवोंको प्राप्त हो सकते हैं?। गुरुमहाराज बोले-भद्रे! सुदेव, सुगुरु और सुधर्मकी श्रद्धा होनेसे तथा जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करनेसे स्वर्गापवर्गके सुखोंको जीव प्राप्त करते हैं, चारित्र धर्मको प्रतिपादन करनेपर लघुकर्मा होनेसे रानी पुष्पचूलाको संसारसे वैराग्य पैदा हुआ, अत एव वह हाथ जोड़ कर गुरुमहाराजसे बोली-भगवन्! मैं अपने पतिसे पूछ कर आपके चरणकमलोंमें दीक्षा ग्रहण करूँगी, आचार्य महा-राज तथास्तु कह कर अपने स्थानपर चले गये और रानी पुष्पचूलाने अ-पने पतिके पास जा कर दीक्षा ग्रहण करनेका आग्रह किया और बोली-स्वामिन् मुझे संसारके सुख तृण समान मालूम होते हैं, अब मेरा मन संसारमें बिलकुल नहीं लगता, अत एव आप मुझे दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दें।

राजा बोला-एक तरहसे मैं तुझे दीक्षा ग्रहण करनेकी आज्ञा दे सकता हूँ अन्यथा नहीं, वह यह है कि दीक्षा लेकर हमेशा ही तू मेरे घरका आहार-[illegible]ण करे और दूसरे किसीके घर न माँगे

तो में आज्ञा दूँ, रानीने यह बात मंझूर कर ली और अर्थी जनोंको दान देना शुरू कर दिया, बड़े महोत्सवसे पुष्पचूलाने अन्निकापुत्राचार्य महाराजके पास दीक्षा ग्रहण की और अनेक प्रकारके अभिग्रहोंको धारण करती हुई चारित्रकी भली प्रकारसे आराधना करने लगी। पुष्पचूला साध्वी, गुरुमहाराजकी दी हुई शिक्षाको भली प्रकार ग्रहण करती हुई थोड़े ही समयमें सामाचारीसे महरमकार होगयी, संयति लोगोंको सामाचारीमें अवश्य प्रवीणता प्राप्त करनी चाहिये क्योंकि संयति सामाचारीमें विचक्षण होगा तो ही शुद्ध संयम पाल सकेगा। एक दिन अन्निकापुत्राचार्य महाराजने अपने श्रुत ज्ञान बलसे भावी भयानक बारह वर्षका दुर्भिक्ष जान कर अपने गच्छको आज्ञा कर दी कि जहाँपर सुकाल हो उस देशमें चले जाओ यहाँ तो बारह वर्षका दुर्भिक्ष पड़नेवाला है, यदि तुम सुभिक्ष देशमें चले जाओगे तो तुमारे प्राण बच सकेंगे और प्राण रहनेसे तुम शासनका उद्धार कर सकोगे अन्यथा तो जीना मुस्किल होगा। गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर साधुलोग सुभिक्ष देशमें चले गये, आचार्य महाराजकी जंघाओंमें विहार करनेका बल न रहा था, अत एव वे खुद वहाँ ही रह गये, जब दुःसह्य परिषहोंको अंगीकार करके विना परिवारके आचार्य महाराज वहाँपर ही रह गये तब पिताके समान भक्ति करनेवाली साध्वी पुष्पचूला ही राजकुलसे गुरुमहाराजको आहार—पानी ला देती थी, शुद्ध अन्तःकरणसे संसारकी असारता विचारते हुए और गुरुमहाराजकी पर्युपासना करते हुए मुक्ति संपदाका निदानभूत पुष्पचूलाको एक दिन केवलज्ञान प्राप्त होगया परन्तु केवलज्ञान प्राप्त होनेपर भी पुष्पचूला गुरुमहाराजकी भक्ति वैसी ही करती रही जैसी कि पहले किया करती थी, बल्कि यों कहना चाहिये कि पहलेसे भी विशेष करने लगी क्योंकि शास्त्रमें भी कहा है कि—

पुरा ह्यभूत्प्रयुञ्जानः कृत्यं यो यस्य तस्य सः ।
केवल्यपि च कुर्वीत स यावद्वेत्ति तं नहि ॥

केवलज्ञानको धारण करनेवाली साध्वी 'पुष्पचूला' गुरुमहाराजको जैसा भोजन करनेकी इच्छा होती है वैसा ही ला देती है, इससे गुरुमहाराजको बड़ा आश्चर्य हुआ, अत एव एक दिन गुरुमहाराजने साध्वी पुष्पचूलासे पूछा कि भद्रे! तू मेरे अभिप्रायको कैसे जान लेती है? क्योंकि जिस दिन जिस वस्तुका मैं मनसे भी विचार करता हूँ वही वस्तु विना पूछे ही तू मुझे ला देती है, पुष्पचूला बोली—महाराज मैं आपकी प्रकृतिको जानती हूँ जो आदमी जिसके पास हमेशा रहने लगे अकसर वह उसकी प्रकृतिसे महरमकार हो ही जाता है । एक दिन 'पुष्पचूला' वृष्टि पड़ते हुए गौचरी लेकर आ रही थी जब उपाश्रयमें आगयी तब गुरुमहाराजने देख कर उसे कहा—भद्रे! श्रुतज्ञानको पढ़ कर भी (यानी जानकार होकर) तूने यह क्या किया! वर्षादमें साधु—साध्वीको मकानसे बाहर निकलनेकी मनाई है और तू तो वर्षाद वर्षते हुए गौचरी ले आई, तुझे ऐसा करना सर्वथा उचित नहीं था, पुष्पचूला बोली—महाराज! जिस रास्ते अचित अपकाय पड़ता था अर्थात् जिस रास्ते अचित्त वर्षाद वर्षता था उस रास्तेसे मैं गौचरी लेकर आयी हूँ इस लिए यह कुछ अनुचित नहीं और जिनागममें इस बातका प्रायश्चित भी नहीं है, सूरीश्वर बोले—भद्रे! अमुक रास्ते सचित अपकाय वर्षता है और अमुक रास्ते अचित्त अपकाय वर्षता है यह ज्ञान् तुझे किस तरह हुआ, विना अतिशय ज्ञानके यह बात मालूम नहीं हो सकती, पुष्पचूला बोली—महाराज! मुझे आपकी कृपासे केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, इसीसे मैं सब कुछ जानती हूँ, यह सुन कर आचार्य महाराजके मनमें बड़ा खेद हुआ और पश्चात्ताप करने लगे कि अहो मैंने केवल-

ज्ञानीकी अवज्ञा की इस अतिचारसे कैसे छुटकारा होगा? और मुझे इस भवमें केवलज्ञानकी प्राप्ति होगी या नहीं, केवलज्ञानको धारण करनेवाली साध्वी पुष्पचूला बोली—हे मुनिपुङ्गव! आप अधृति मत करो, आपको भी गङ्गा नदी उतरते हुए इसी भवमें केवलज्ञान प्राप्त होगा, यह सुन कर आचार्य महाराज लोगोंके साथ गङ्गा उतरनेके लिए चल पड़े क्योंकि जान बूझ कर कौन अपने स्वार्थसे वञ्चित होता है? आचार्य महाराज लोगोंके साथ गङ्गा उतरनेको जब 'नाव' पे सवार होगये तब जिधर आचार्य महाराज बैठते हैं उधरसे ही नाव डूबनेको होजाती है, फिर वहाँसे उठ कर जिस जिस किनारेपर जाकर बैठते हैं, नावका वही किनारा पानीमें डूबनेको होजाता है, आचार्य महाराज उन सब आदमियोंके बीच नावके मध्य भागमें बैठ गये, तब तो सारी ही नाव डूबने लगी, नावमें बैठे हुए उन सब लोगोंने विचार किया कि भई नाव तो इस साधु महाराजके बैठनेसे डूबती है, इसके निमित्तसे सब लोगोंको नाव सहित गङ्गामें डूबना पड़ेगा इससे इस महात्माको ही गङ्गाकी भेट कर दो, यह विचार करके उन सब लोगोंने आचार्य महाराजको उठा कर गङ्गा नदीमें फेंक दिया, आचार्य महाराज जब पानीमें फेंके गये तब जलके अन्दर एक शूली खड़ी होगई और उस शूलीपर आचार्य महाराजका शरीर लटक गया, शूलीपर टँगे हुवे भी समताके सागर आचार्य महाराज विचारते हैं कि अहो! धिक्कार है मेरे इस शरीरको जिसके रुधिर पातसे अनेक जलजन्तुओंका प्राणापहार होगा, आचार्य महाराज अपने शरीरकी मूर्च्छा न करके जीवदया विचारते हुए क्षपक श्रेणिपर आरुढ होकर अन्तकृत केवली हो शुक्ल ध्यानमें निर्वाणको प्राप्त होगये, पाठकोंके दिलमें इस बातका बड़ा आश्चर्य हुआ होगा कि तद्भव मोक्षगामी आचार्य महाराजकी गङ्गा उतरते समय ऐसी दशा क्यों हुई?

इसका कारण यह समझना कि आचार्य महाराजके पूर्वजन्मकी द्वेषिणी एक व्यन्तरी थी पूर्वजन्मके वैरसे उसने ही यह प्रपंच रचा था, शत्रु लोग सदा काल ही संसारमें अपकार बुद्धिसे पेस आया करते हैं परन्तु जिसके पुण्यका सितारा तेज है उसे वह अपकार भी उपकाररूप होजाता है, आचार्य महाराजका निर्वाण जान कर समीप वर्ती देवताओंने निर्वाण महोत्सव किया, जहाँपर आचार्य महाराजका देवताओंने निर्वाण महोत्सव किया था वह स्थान उस दिनसे प्रयाग तीर्थके नामसे प्रसिद्ध होगया बल्कि आज तक भी इसी नामसे प्रसिद्ध है और वैष्णव लोग इसे महा तीर्थ और बड़ा पवित्र स्थान मानते हैं । अन्निकापुत्राचार्यका शरीर जलचर जन्तुओंने जब छिन्न भिन्न कर दिया तब उनकी खोपरी, जलप्रवाहसे बहती हुई गङ्गाके किनारेपर आ लगी और कहीं गुप्त प्रदेशमें अटक गई, एक दिन दैवयोग किसी प्रकारसे उस 'खोपरी' के अन्दर पाटलि वृक्षका बीज आ पड़ा और वह बीज उस खोपरीके अन्दर ही अंकुरित हो गया, परिणाम यह हुआ कि आज वह पाटलि वृक्ष इस विसालताको प्राप्त हुआ है कि देखते ही मनुष्योंका चित्ताकर्षित होजाता है और केवलज्ञानी महात्माकी खोपरीमें ऊगनेसे यह वृक्ष बड़ा पवित्र है इतनाही नहीं बल्कि इस वृक्षके मूलका जीव एक भवावतारी है, इस लिए राजन्! महा पवित्र इस पाटलि वृक्षके प्रभावका आलम्बन लेकर यहाँ नगर वसाओ आपको सर्व प्रकारसे कुशलता और समृद्धि प्राप्त होगी ।

पाटलि वृक्षसे लेकर जहाँ शिवाका शब्द हुआ था (यानी जहाँपर गीदड़ीका शब्द हुआ था) वहाँ तक नगर वसानेके लिए जमीन मापनेकी आज्ञा करो ! राजाने नैमित्तिकोंका कहना मंजूर किया और उन्हें मान दान देकर सभासे विदा किया । राजाने नैमित्तिकोंके

कहे मुजब ही नौकरोंको आज्ञा देदी कि जाओ पाटलि वृक्षसे लेकर पश्चिम दिशामें एक श्रेणिकी जमीन मापो, एवं पूर्व दिशा, उत्तर दिशा और दक्षिण दिशामें एक एक श्रेणिकी जगह मापो, अर्थात् पाटलि वृक्ष इन चारों श्रेणियोंके मध्य भागमें आना चाहिये। नौकरोंने राजाकी आज्ञानुसार उस उद्यानमें जाकर पाटलि वृक्षको मध्यमें लेकर नगरकी चार श्रेणियोंके लिए जमीन माप ली। राजाकी आज्ञानुसार वह नगर ऐसा बनाया गया कि मानो स्वर्गका भी तिरस्कार करता था, नगरका नाम पाटलिपुत्र रक्खा गया, नगरका मध्य भाग जिनेश्वर देवके मन्दिरोंसे ऐसी शोभाको धारण करता था जैसे देव विमानोंसे 'देवलोक' राजमन्दिरोंकी शोभा इन्द्रकी सभाका तिरस्कार करती थी, अन्य भी पण्यशाला दानशाला पोषधालायेंसे नगरकी शोभा अमरावतीका हास्य करती थी। एक दिन अच्छा मुहूर्त और शुभ दिन देख कर बड़े महोत्सवके साथ प्रवेश करके राजाने प्रजा सहित उस नगरको अलंकृत किया और पूर्व पितृवियोगको भूल कर वहाँपर अपनी प्रचण्डाखण्डाज्ञासे राज्य करने लगा, उदयको भजनेवाले राजा उदायीके प्रचण्डशासनसे मगध देशके खँडिये राजा, उदायीके सामने सेवकोंके समान आचरण करते थे. राजा 'उदायी' जैनधर्मी था. अत एव उसके हृदयमें धर्मकी इतनी दृढ़ता थी कि वीतदोषसर्वज्ञ 'देव' के समान अन्य किसीको भी देवत्व बुद्धिसे नहीं देखता था, पंच महाव्रतके धारण करनेवाले साधुके सिवाय अन्यको गुरु बुद्धिसे न देखता था और सर्वज्ञ देव भाषित धर्मके सिवाय अन्य धर्मको धर्मबुद्धिसे नहीं मानता था इतना ही नहीं बल्कि धर्मक्रियाके ऊपर राजा उदायीकी इतनी रुचि थी कि पर्व तिथिको तपस्या करके पोषधशालामें पोषा प्रतिक्रमणादि बड़ी प्रीतिसे किया करता था। राजा उदायीके प्रचण्ड शासनसे सब राजाओंका

नाकमें दम आगया था परन्तु उनका कुछ जोर न चलता था, वे सब मिल कर यहीं विचार किया करते थे कि जब तक राजा 'उदायी' जीवित है तब तक हमें राज्यसुखका अनुभव स्वप्नमें भी नहीं प्राप्त हो सकता। इधर उसी समय एक खँडिये राजासे 'उदायी' का कुछ गुनाह होगया था, उदायीने जबरदस्ती उसका राज्य छीन लिया और उसे कैदमें डालनेका हुक्म दे दिया, उस राजाको मालूम होनेसे वह अपने प्राणोंको ले कर वहाँसे अन्यत्र जानेके लिये भाग निकला, मगर दैवयोग रास्तेमें ही उसके प्राणोंने उसके शरीरका त्याग कर दिया। उस राजाके एक लड़का था, वह भी बिचारा राज्यसे भ्रष्ट हो कर गाँवोगाँव भटकता हुआ उज्जयिनी नगरीमें जा कर अवन्ति पतिकी सेवा करने लगा, (अवन्ति पतिसे उज्जयिनी पति राजा समझना चाहिये,) अवन्ति पति भी उस समय उदायीसे विरुद्ध था, एक दिन उदायी राजाके शत्रु उस राजपुत्रने जो अपने राज्यसे भ्रष्ट हो कर उज्जयिनी पतिके वहाँ भृत्य कर्म करता था, उज्जयिनी पतिसे एकान्तमें यह विज्ञप्ति की कि राजन्! आपकी सहायता हो तो आपके शत्रु उदायीको खाकमें मिला दूँ, यह सुन कर उज्जयिनी पति बोला—यदि तू इस कामको कर सकता है तो फिर क्या चाहिये? ऐसा कौन है जो अपने प्राणोंको तृण समान समझ कर ऐसा कार्य करनेका साहस करे? तू इस कामके करनेका साहस करता है तो हम तेरा पीछा करेंगे। इस प्रकार उज्जयिनी पतिकी अनुमति लेकर वह धूर्त पाटलिपुत्र नगरमें जाकर उदायी राजाके वहाँ भृत्य कर्म करने लगा, अर्थात् उदायी राजाके दरबारमें नौकर होगया, वह दुरात्मा वहाँ रह कर राजा उदायीका छिद्र देखता रहा परन्तु राजाके पास तक भी उसे जाना न मिलता था एकान्तमें दाव लगनेकी तो बात ही क्या? उदायी जैनधर्मी था अत एव परम श्रावक होनेसे जैन मुनियोंका

राजकुलमें आना जाना अस्खलद्गतिसे होता था, अर्थात् राजकुलमें जैनमुनियोंको आने जानेकी किसी प्रकारकी रोक टोक न थी, साधु लोगोंका अस्खलद्गतिसे राजकुलमें आना जाना देख कर उस धूर्तने अन्दर प्रवेश करनेके लिए उन साधुओंके स्वामी आचार्य महाराजके पास बनावटी भक्ति वैराग्य दिखा कर दीक्षा ग्रहण कर ली, उस मायावी साधुने दम्भसे निरतिचार चारित्र पालते हुए सब मुनियोंको ऐसा विश्वास कर दिया कि वे सब ही साधु उस दम्भी मुनिको बड़ा वैराग्यवान् और क्रियापात्र समझने लगे, परन्तु उसके दम्भ भरे साधुत्वको कोई भी न जान सका, भला जान कैसे सके? जो भली प्रकारसे दम्भकी रचना की जाय तो उसके अन्तको ब्रह्माजी भी नहीं पा सकते तो फिर उन बिचारे भद्रभाववालों तथा सरलाशय मुनियोंका तो कहना ही क्या?। 'उदायी' अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व तिथियोंमें पोषधव्रत किया करता था और उस दिन आचार्य महाराज पोषधशालामें ही रह कर उदायी राजाको धर्म सुनाया करते थे, एक दिन राजा उदायीने पोषध किया हुआ था अत एव आचार्य महाराजने आहार-पानी करके सन्ध्या समय राजकुलमें जानेका विचार किया। आचार्य महाराजको जब कभी राजकीय पोषधशालामें राजा उदायीके पास रात्रिके समय रहना पड़ता था तब वे अपने बड़े विश्वासपात्र ही साधुको साथ ले जाते थे अन्यको नहीं, परन्तु उस छोटे साधुका वैराग्य और क्रिया देख कर आचार्य महाराजको भी उसपर पूर्ण विश्वास होगया था अत एव आचार्य महाराजने बड़ा शान्त और वैराग्यवान् समझ कर उस दिन उस छोटे साधुको ही साथ ले जानेकी आज्ञा फरमाई कि हे मुने! आज राजकुलमें जाना है रातको वहाँ ही रहना होगा चल उवधि उठा ले चलें, आचार्य महाराजका यह वचन सुन कर वह मायी श्रमण मनमें बड़ा खुशी हुआ

और भक्ति नाटक दिखलाता हुआ आचार्य महाराजकी तथा अपनी उवधी उठा कर आचार्य महाराजके साथ होगया, आचार्य महाराज उस छोटे साधुको साथ लेकर राजकुलमें चले गये, प्रतिक्रमण किये बाद आचार्य महाराजके साथ बहुत देर तक राजा 'उदायी' धर्म चरचा करता रहा और आचार्य महाराज भी अपने मधुर वचनोंसे राजा उदायीके धर्म सम्बन्धि प्रश्नोंका उत्तर देते रहे, बहुतसी रात व्यतीत होनेपर संथारा पोरसी पढ़ा कर आचार्य महाराज तथा राजा उदायी तो अपने २ संस्थारक पर सो गये मगर छोटा साधु तो किसी और ही ध्यानमें था अत एव उसे निद्रा कहाँ? क्योंकि कहावत भी है कि—

निद्रापि नैति भीतैव, रौद्र ध्यानवतां नृणाम् ।

जब आधी रात बीत गई आचार्य महाराज और राजा उदायी सघन निद्रामें पड़े सो रहे थे तब उस दुरात्मा दम्भी साधुने रजोहरण (ओघा) मेंसे एक छोटीसी बड़ी तीक्ष्ण छुरी निकाली, यमराजकी जीभके समान उस तीक्ष्ण पैनी छुरीसे केलेके वृक्षके समान कोमल राजा उदायीके गलेको निःशंक होकर उस पापात्मा दम्भी मुनिने काट डाला और छुरीको वहाँ ही डाल कर पहरेदारके पास जङ्गल जानेका बहाना लेकर राजकुलसे बाहर निकल गया। राजा उदायीकी गरदन कट जानेपर खूनकी धारा बह निकली, राजाके समीप ही आचार्य महाराजका संस्थारक था अत एव उनके शरीरके साथ खूनका संस्पर्श होनेसे शीघ्रही आचार्य महाराजकी निद्रा उड़ गई, आचार्य महाराज पंचपरमेष्ठीका स्मर्ण करते हुए संस्थारक (शयन स्थान) से उठे, पासमें देखते हैं तो मृणाल—दण्डके समान राजा उदायीकी गरदन कटी पड़ी है और खूनकी धारा फुवारेके समान निकल रही है, आचार्य महाराजने यह दृश्य देख कर उस छोटे साधुकी तर्फ दृष्टि डाली मगर उसका तो कहाँपर पता न लगा उसके

संस्थारकके पास लहूमें भरी हुई एक छोटीसी छुरी देख पड़ी, आचार्य महाराजने उस दुरात्मा दम्भी मुनिको वहाँ न देख कर मनमें निश्चय कर लिया कि यह अकृत्य उसी दुरात्माका है, इस अकृत्यको देख कर आचार्य महाराजका हृदय भर आया और मन ही मन चिन्ता समुद्रमें मग्न होगये, अरे दुष्ट यह तूने क्या अकृत्य किया जो धर्मके आधारभूत नृपतिको मारके प्रवचनको मलीन किया? अथवा यह सब मेरा ही दोष है जो ऐसे दुरात्माको दीक्षा दी और विश्वास करके अपने साथ राजकुलमें लाया, खैर अब मैं आत्म त्याग करके प्रवचनका जो उड्डाह होना था उसकी तो रक्षा करूँ, प्रातःकाल इस अदर्शनीय दृश्यको देख कर सब लोग यह समझ लेंगे कि आचार्य और राजाको किसी शत्रुने मार दिया। यह विचार कर आचार्य महाराजने तद्भव संबन्धि प्रत्याख्यान करके जिस छुरीने राजा उदायीके प्राणोंका अपहार किया था उसी छुरीको अपनी गरदनपे फिरा लिया। विचारनेकी बात है आचार्य महाराजने धर्मकी नीन्दा न होनेके लिए अपने प्राणोंको भी कुछ नहीं समझा, धन्य है ऐसे महात्माओंको जो धर्मकी रक्षाके लिए अपनी आत्माको भी समर्पण कर देते हैं। प्रातःकाल होनेपर 'शय्यापालक' पोषधशालामें आये परन्तु उस अमङ्गलको देख उनका शरीर काँप उठा अत एव उन्होंने चिल्ला कर पुकार की, फिर तो कहना ही क्या था, सब ही राज पुरुष इकट्ठे होगये, राजा उदायी और गुरुमहाराजकी लाशें देख कर सबका ही कलेजा काँप उठा और सबने मिल कर यही निश्चय कर लिया कि आचार्य महाराज तथा राजा उदायीको उसी छोटे मुनिने मारा है जो धूर्त इस वक्त यहाँपर देख नहीं पड़ता और इसी लिए वह धूर्त इस अकृत्यको करके शीघ्र ही पलायन कर गया, अवश्य वह कोई राजाका वैरी या वैरी पुत्र था, अथवा किशी शत्रुका भेजा हुआ होना

चाहिये, उस दुरात्माने यह अनर्थ करनेके लिए ही आचार्य महाराजके पास दीक्षा ली थी। यह प्रसिद्ध होनेपर राजकुलमें हाहाकार मच गया, सब लोगोंके होश हवास उड़ गये और सबके सब मन ही मन विचारने लगे–अहो आचार्य महाराज और राजामें परस्पर कैसा गाढ धर्म स्नेह था? आचार्य महाराज राजापर पुत्रसे भी अधिक दृष्टि रखते थे, राजा भी आचार्य महाराजको पिताके समान ही समझते थे, मालूम होता है कि उस दुरात्माने महात्मा सूरीश्वर और धर्मात्मा राजाको सोते समय ही कतल किया है वरन कुछ तो शोर होता, उस दुरात्माने विनय दम्भ दिखा कर महान् तत्ववेत्ता आचार्य महाराजको भी ठग लिया, अथवा संसारमें धूर्त, दम्भी, मायी और स्वार्थपरायण मनुष्योंसे कौन नहीं ठगा जा सकता? । मंत्रिसामन्तोंने उस पापात्माको पकड़नेके लिए चारों तर्फ घोड़ेसवार भेजे मगर उसका कहीं भी पता न लगा, मंत्री सामन्त वगैरह प्रधान पुरुषोंने अश्रुधारा बरसाते हुए राजा और आचार्य महाराजके शरीरका अग्निसंस्कार किया, उदायी राजाको मार कर वह दुष्ट शीघ्र ही उज्जयिनी नगरीमें चला गया और उज्जयिनी पति राजासे राजा उदायीके मारनेका सब ही समाचार कह सुनाया; उज्जयिनी पति बोला–अरे दुष्टबुद्धि! जब तू इतने समय तक दीक्षा ग्रहण करके–रात दिन समता प्रधान साधुओंके पास रह कर और हमेशा धर्मोपदेश सुन कर भी शान्त न हुआ और ऐसा दुष्कर्म करनेसे पीछे न हटा तब तू मेरा क्या भला कर सकता है? जा काला मुँह करके मेरे राज्यसे निकल जा, मुझे अपना मुँह न दिखा वरन तुझे भी उदायीके पास ही पहुँचाऊँगा, राजा अवन्ती पतिने उस कर्म चाण्डालको अपने राज्यसे तिरस्कारपूर्वक निकाल दिया, उस दिनसे उस अभव्य शिरोमणिका जगतमें उदायी मारक नाम प्रसिद्ध होगया।

॥ अठारहवाँ परिच्छेद ॥

राजा नन्द और उनका प्रधान मंत्री कल्पक ।

इधर उसी पाटलिपुत्र नगरमें वेश्याकी कुक्षिसे जन्म पानेवाला नन्द नामका एक नापित पुत्र (नाई–पुत्र) रहता था उस नापित कुमारने एक दिन प्रभातके समय सोते हुए स्वप्नमें पाटलिपुत्र नगरको अपनी आँतोंसे वेष्टित किये देखा और निद्रा खुल जानेपर उपाध्यायके घर जा कर वह स्वप्न कह सुनाया, उपाध्यायने उस प्रशस्त स्वप्नको सुन कर बड़ी प्रीतिपूर्वक वस्त्राभरणोंसे अलंकृत करके नन्दको अपनी लड़की व्याह दी, अब नवीन अपने जमाई नन्दको उपाध्याय पालकीमें बैठा कर बड़े उत्सवके साथ नगर यात्रा करानेके लिए निकला हुआ है, राजा उदायीको अभी तक कोई सन्तान न हुई थी और नाही उसका कोई ऐसा निकट संबन्धी था कि उदायीके पीछे उसकी राजगद्दीका मालिक होसके । इस लिये मंत्री लोगोंने राज्य कायम रखनेके लिए पाँच दिव्य राजकुलमें फिराये, अर्थात् राजगद्दीपर किसे बैठावें इस विचारसे उन्हें पंच दिव्यकी जरुरत पड़ी, पंच दिव्योंके नाम–१ पट्टहस्ती, २ प्रधान अश्व, ३ जलपूर्ण कुम्भ, ४ छत्र और चामर ये पंच दिव्य होते हैं, राजकुलमें जब उन्हें कोई पुरुष राजगद्दीके योग्य न देख पड़ा तब वे बाहर नगरमें घूमने लगे, ज्यों ही वे नगरमें फिर रहे थे त्यों ही सामनेसे पालकीमें बैठा हुआ नापित कुमार नन्द आ रहा था, नन्दको देख कर 'पट्टहस्ती' ने उसके म-

स्तकको जलपूर्ण कुम्भसे अभिषिञ्चित किया और वर्षाकालके मेघके समान गर्जारव करके अपनी सूँडसे उठा कर नन्दको अपने मस्तक पर बैठा लिया, प्रधान अश्व भी नन्दको देख हर्षसे हिनहिना पड़ा, छत्र भी नन्दके ऊपर विकसित होगया और चामर भी उसके ऊपर ढुलने लगे, यह देख प्रधान पुरुषों तथा नगरवासी महान् पुरुषोंने मिल कर सानन्द 'नन्द' को महोत्सवपूर्वक राज्याभिषेक किया, भगवान् महावीरस्वामीके निर्वाणसे ६० साठ वर्ष बाद राजा उदायीकी राजधानीका मालिक यह पहला नन्द हुआ, नन्दको जब राज्याभिषेक होगया तब कितने एक सामन्त लोगोंने उसे नापित पुत्र समझ कर नमस्कार न किया, राजा नन्द भी उनके मनोगत भावकी परिक्षा करनेके लिए एक दिन राजसभामें अपने सिंहासनसे उठ कर दरवाजेपर जा खड़ा हुआ, मगर उन अविनीत सामन्तोंमेंसे कोई भी अपने स्थानसे न उठा, राजाके साथ जानेकी तो बात ही क्या? यह बनाव देख कर राजा नन्द पीछे लौट आया और सिंहासनपर बैठ कर पहरेदार लोगोंको आज्ञा दी कि इन दुष्ट सामन्तोंको मारो, राजाकी आज्ञा पाकर पहरेदार लोग भी परस्पर आँखें फाड़ कर देखने लगे, राजा नन्द यह दृश्य देख कर समझ गया कि ये लोग सब परस्पर मिले हुए हैं, यह समझ कर दरवाजेमें जो दो पुतलियां चित्री हुई थीं उनकी ओर देखता हुआ राजा आश्चर्यमें मग्न होगया, परन्तु जिसके पुण्यका सितारा तेज होता है वही सर्वोपरि होता है, नन्दका इस वक्त चढ़ता पुण्य था अत एव उसके पुण्यके प्रभावसे किसी एक देवताने उन दोनों पुतलियोंमें आ प्रवेश किया, अब वे दोनों पुतलियें तरवार लेकर उन अविनीत सामन्तोंके पीछे दौड़ीं, इस चमत्कारको देख कितने एक दुष्ट लोग तो राजसभासे भाग निकले और कितने एक उन पुतलियोंके हाथोंसे हताहत होकर यमराजके महमान (पा-

ट्टने) होगये, अब राजा नन्दकी आज्ञा इन्द्रके समान अखण्ड प्रवर्तने लगी—

नन्दोराजा राजमानो महद्धर्या, भूसुत्रामा सुत्रिताज्ञो बभूव ॥
प्रायः पुण्यं विक्रमश्च प्रमाणं, क्लीबं जन्म श्लाघनीयेपिऽवंशे ॥१॥

इधर उसी नगरमें द्रवाजेसे बाहर 'कपिल' नामका एक ब्राह्मण रहता था। एक दिन अपने शिष्य परिवार सहित एक जैनाचार्य पाटलिपुत्र नगरमें आ रहे थे परन्तु अभी नगरमें प्रवेश नहीं किया था, नगरसे बाहर आचार्य महाराज सपरिवार अभी कपिल ब्राह्मणके घर तक ही आये थे, सूर्य अस्त होनेमें कुछ मिनटोंकी ही देर थी इतनेमें तो पश्चिम दिशाने अपने पति सूर्यके वियोगसे भगवीं पोशाक धारन करनी शुरू की, देखते ही देखते जरासी देरमें तो सूर्य देव भी सुमेरु पर्वतकी यात्रा करनेके लिए अस्ताचलपर जा आरूढ़ हुए, अब तो कहना ही क्या था सूर्यदेवको जाते देख चारों दिशाओंमें पक्षियोंने कोलाहल मचा दिया, धीरे धीरे पर्वतोंकी कन्दराओंमें लुकता छिपता अन्धकार भी अपने सैन्य सहित पृथिवी तलपर साम्राज्य जमानेके लिए आने लगा, एक एक करके तारोंने भी गगनमंडलको घेर लिया, अन्धकारका साम्राज्य होनेपर जङ्गलके वृक्ष भी अँधेरेमें लम्बी लम्बी टाँगोंवाले राक्षसके समान देख पड़ने लगे, इस प्रकार भूमण्डलको अन्धकारमय होजानेपर आचार्य महाराज किस तरह नगरमें प्रवेश कर सकते थे? अत एव उन्होंने पासमें जो कपिल ब्राह्मणका घर था उसको ही 'कपिल' की अनुमतिसे पावन किया, आचार्य महाराज सपरिवार कपिलकी अनुमतिसे उसकी अग्निहोत्रशालामें उस रातको ठरह गये। ये जैन साधु कैसे विद्वान् हैं और कितने पानीमें हैं यह जाननेकी बुद्धिसे 'कपिल' रातको आचार्य महाराजके पास आया और उचित व्यवहार कर

आचार्य महाराजके सन्मुख बैठ गया, श्रुतसागर पारगामी आचार्य महाराजने कपिलके सामने मधुर वचनोंसे सुधाके समान धर्मदेशना प्रारम्भ की, अकारण उपकार रसिक आचार्य महाराजने ऐसी धर्मदेशना सुनायी कि जिस बुद्धिसे कपिल आया था उसे भूल कर और आचार्य महाराजकी धर्मदेशना सुन कर एक दम परम श्रावक बन गया, क्योंकि सरल स्वभावी विद्वान् लोग अवश्य ही श्रेष्ठ मार्ग जाननेपर उसीपर चलते हैं और उन्मार्गको छोड़ देते हैं, परन्तु जो दुर्बोध अनाड़ी होते हैं उनको ही हठवाद होता है। प्रातःकाल होनेपर आचार्य महाराज तो अन्यत्र विहार कर गये क्योंकि जैनमुनियोंका वर्षाकाल सम्बन्धि चातुर्मासके सिवाय कभी भी एक स्थानपर स्थायी रहना नहीं होता और यदि वे निष्कारण एक स्थानपर स्थायीभावसे रहें तो जैनशास्त्रके विरुद्ध है, 'कपिल' जिनेश्वर देवके धर्मकी सेवा करता हुआ संतोषसे अपने समयको बीताता है। एक दिन वर्षाकालमें कोई एक आचार्य महाराज अपने शिष्य परिवार सहित 'कपिल' की अनुमतिसे उसके मकानपर चातुरमास रहे, 'कपिल' के उस समय एक लड़का हुआ था, दैवयोगसे उस लड़केको पैदा होते ही व्यन्तरियोंने ग्रहित कर लिया था, इस रोगको दूर करनेके लिए कपिलने बहुतसे उपाय किये मगर सफलता एकमें भी प्राप्त न हुई, एक दिन एक साधु अपने पात्र धोकर जमीनपर पानी डालता था, यह देख कर श्रद्धाशाली कपिलने उस बालकको आगे कर दिया अत एव वह साधुओंके पात्रका पानी उस बालकके मस्तकपर पड़ गया, महा प्रभावशाली उन महर्षियोंके पात्रके पानीसे वह बालक निरोगी होगया, अर्थात् मुनियोंके पात्रके पानीके प्रभावसे व्यन्तरियोंने उस बालकको छोड़ दिया और उस दिनसे लेकर उस बालकको कभी भी वह रोग न हुआ, कपिलने उस बालकका नाम 'कल्पक' नाम

रक्खा, कल्पक जब विद्याभ्यास करनेके योग्य हुआ तब कपिलने उसे विद्याभ्यास कराना शुरू किया, प्रज्ञावान होनेसे 'कल्पक' थोड़े ही समयमें शास्त्रज्ञ और बड़ा दक्ष होगया, 'कल्पक' बचपनसे ही जितेन्द्रिय और बड़ा नेक नियत था, अत एव वह सर्व साधारण जनोंकी दृष्टिमें प्रमाणिक गिना जाता था, कल्पके मातापिताओंका स्वर्गवास होनेपर 'कल्पक' सर्व प्रकारसे स्वतंत्र होगया, कल्पकके समान पाटलिपुत्र नगरमें विद्वान् तथा दक्ष अन्य कोई न था, अत एव नगरके जितने ब्राह्मणपुत्र विद्यार्थी थे वे सब ही 'कल्पक' के पास विद्याभ्यास करने लगे, कल्पकको उसके पिता कपिलने बचपनसे ही जैनशास्त्रोंका अभ्यास कराना शुरू करा दिया था इसीसे उसकी रगरगमें जैनधर्म परिणित होगया था, अत एव परम श्रावक होनेसे 'कल्पक' बड़ा संतोषधारी था, अर्थात् वह ऐसा निर्लोभी था कि, अधिक परिग्रह मनसे भी न इच्छता था. 'कल्पक' ऐसा तो जितेन्द्रिय था कि बड़ी रूपवती और गुणवती कन्यायें देनेके लिए ब्राह्मण लोग उससे प्रार्थना किया करते थे मगर कामदेवको जीतनेमें अद्वितीय सुभट 'कल्पिक' किसीकी भी प्रार्थनाको स्वीकार न करता था, 'कल्पक' जब अपने विद्यार्थी मण्डलके साथ नगरमें निकलता था तब बहुतसे नगरवासी जन खड़े होकर उसकी ओर देखा करते थे, कल्पकके समान नगरमें अन्य कोई गुणवान् न था इसीसे वह सर्व नगरवासियोंका पूज्यनीय था, इधर उसी नगरमें एक ब्राह्मण रहता था उसके सुरूपवती और गुणवती लक्ष्मीके समान एक लड़की थी परन्तु इतने गुण होनेपर भी उस लड़कीके साथ कोई पानीग्रहण न करता था, इसका कारण यही था कि उस लड़कीके पेटमें 'जलोदर' रोग होगया था, उस रोगने उसके सब गुणोंको दूषित कर दिया था, बल्कि उसका पेट उस रोगसे ऐसा बढ़ गया था कि कुमारी भी

गर्भवती स्त्रीके समान देख पड़ती थी, एक दिन उस लड़कीको ऋतुमती देख उसकी माताने दुःखित होकर उस लड़कीके पितासे सब हाल कह सुनाया, ब्राह्मण बिचारा अपनी पुत्रीकी ‘ऋतु’ सम्बन्धि बात सुन कर मन ही मन दुःख मनाता हुआ अपनी स्त्रीसे बोला– प्रिये? यह हमारा ही दोष है, जो इस लड़कीका विवाह पहले न किया, अब विकल्प करनेसे क्या होता है? हाँ यदि हम पहले ही इस लड़कीका व्याह कर देते तो आज यह दुःखमय समय देखना न पड़ता, खैर अब क्या किया जाय? इस जलोदर रोगवाली लड़कीका तो कोई धन लेकर भी पानीग्रहण नहीं करता, अब तो किसीको वाग्जालमें ला कर इस लड़कीको घरसे विदा करना उचित है, परन्तु ‘कल्पक’ के सिवाय और कोई वाग्जालमें आनेवाला देख नहीं पड़ता क्योंकि कल्पक बड़ा धर्मीष्ट और दयालू पुरुष है, अत एव वही पेचमें आ सकेगा। उस ब्राह्मणके घरके आगेसे ही होकर कल्पकके घरका रस्ता था अत एव कल्पक वहाँसे हमेशा आया जाया करता था, उस ब्राह्मणने अपने घरके आगे अर्थात् जहाँसे कल्पकका आना जाना होता था उस रस्तेमें एक कूवा खोदा और उस कूवेमें कल्पकके आने समय उस लड़कीको डाल दिया, कल्पकको आते देख उस ब्राह्मणने यह पुकार की कि जो कोई मेरी लड़कीको कूवेमेंसे निकाले उसको इस लड़कीको ही दे दूँ, उस बालिकाको कूवेमें पड़ी चिल्लाती देख कल्पकके हृदयमें दयाकी नदियें बहनें लगीं, उस ब्राह्मणका वचन कल्पकने सुना भी था तथापि दयाके वश होकर उसने उस बालिकाको उस निर्जल कूवेसे निकाल दिया, जब कल्पकने उस बालिकाको कूवेसे बाहर निकाला तब ‘कल्पक’ से उसका पिता बोला–हे महाशय अब आप इस मेरी लड़कीके साथ पानीग्रहण करो क्योंकि मैने पहले ही पुकार कर कह दिया था कि जो कोई मेरी लड़कीको कूवेसे निकाले यह

लड़की उसीको दी जायगी और आपने यह मेरा कथन भली भाँति सुना भी था मगर उस वक्त आपने कुछ भी आनाकानी न की, इससे यह भी सिद्ध होता है कि–अनिसिद्धं अनुमतं, यानी आप पहले मेरी बात सुन कर भी कुछ नहीं बोले तो आपको मेरा कथन अवश्यमेव मंजूर ही होगा, भला आप तो बड़े विद्वान् और न्यायवान् हैं आप खुद ही इस बातका विचार करें, मैं आपके ही ऊपर इस न्यायको सौंपता हूँ, 'कल्पक' यह बात सुन कर विचारमें पड़ गया कि देखो मुझे कोई भी नगर भरमें चमका देनेवाला न था मगर इस ब्राह्मणने अपने बुद्धिबलसे मुझे ऐसा चकमा दिया कि जिससे सारी ऊम्र तक विडम्बना भोगनी पड़ेगी, मैने तो इसको दयावश होकर कूवेसे बाहर निकाली मगर यह तो इल्लत उलटी मेरे ही गलेमें पड़ी, यदि अब इस बातका इन्कार करूँ तो भी लोकमें निन्दा होगी और यदि इसके साथ पानीग्रहण करूँ तो भी ठीक नहीं अब क्या करना चाहिये? । अन्तमें कल्पकको उस बालिकाके पिताकी बात मंजूर ही करनी पड़ी, कल्पककी मरजी शादी करानेकी बिलकुल न थी यदि होती तो उसे पहले ही अच्छे अच्छे घरानोंकी रूपवती तथा गुणवती कन्यायें मिलती थीं मगर उसने मनसे भी यह बात न इच्छी थी जो इस वक्त उसे विवश होकर करनी पड़ी, कल्पक वैद्यविद्यामें भी बड़ा कुशल था अत एव उसने यजुर्वेदमें कही हुई औषधियोंके प्रयोगसे उस बालिकाको निरोगी करके उसके साथ पानीग्रहण कर लिया । एक दिन राजा नन्दने पण्डित कल्पककी बहुत प्रशंसा सुनी अत एव राजाने कल्पकको पण्डित और बुद्धिमान समझ कर अपनी राजसभामें बुलवाया और प्रधान मंत्रीपद देनेकी प्रार्थना की । 'कल्पक' बड़ा संतोषी और निर्लोभ था अत एव उसने राजाकी यह प्रार्थना सुन कर यह उत्तर दिया कि राजन्! मैं अपने निर्वाह

मात्रके सिवाय अधिक परिग्रह रखना मनसे भी नहीं इच्छता और धर्मात्मा तथा सदय मनुष्योंसे इस पदवीका निर्वाह नहीं होसकता, अत एव आपकी अमात्य पदवी मुझे मनसे भी इच्छित नहीं, इस प्रकार राजा नन्दकी आज्ञा की अवज्ञा करके 'कल्पक' अपने घरको चला गया, राजा 'नन्द' कल्पकका रुक्ष उत्तर सुन कर मनमें कुछ क्रोधकी मात्रा धारण करता हुआ उस दिनसे कल्पकके छिद्र देखने लगा, मगर बहुतसे दिनों तक भी नन्दके हाथमें कल्पकका छिद्र न आया क्योंकि निस्पृह महात्माओंमें प्रायः छिद्रका नाम तक भी नहीं होता तो फिर मिलना ही क्या था, जब बहुतसे दिन इस तरह बीत गये तब एक दिन राजाने अपने सुन्दर नामा धोबीको बुलवाया जो कि कल्पकके पड़ौसमें ही रहता था। राजाने सुन्दर धोबीसे पूछा कि तू कल्पकके कपड़े धोता है या नहीं?

सुन्दर बोला–हुजूर! कभी कभी मेरे पास कल्पक अपने वस्त्र धुलाता है, राजा बोला–यदि अबके 'कल्पक' तुझे कपड़े धोनेको दे तो तूने उसे कपड़े मेरी आज्ञा विना वापिस न देना, सुन्दर धोबी राजाकी आज्ञा मस्तकपर चढ़ा कर अपने घरको चला गया, दैवयोग इसी अवसरमें नगरमें बड़ा भारी कौमुदी उत्सव था अत एव एक दिन कल्पककी स्त्रीने अपने पतिसे कहा–स्वामिन्! अब के तो मेरे वस्त्र राजधोबीसे धुलवा दो जिससे मैं भी अच्छे वस्त्र पहिन कर कौमुदी उत्सवको देखूँ, स्त्रीका यह कथन सुन कर पण्डित शिरोमणि कल्पकने मनमें विचारा–यदि राजधोबीको इस वक्त वस्त्र धोनेको दिये जायँ तो कौमुदी उत्सव नजीक होनेसे वह धोबी भाड़ेके लोभसे अच्छे वस्त्र दूसरोंको दे देगा और अपनेको मौकेपर वस्त्र न मिलेंगे, मौकेपर धोबीसे वस्त्र न मिलनेपर नाहक अपने चित्तमें क्लेश पैदा होगा अत एव जाने दो कौन अब इस झगड़ेमें पड़े?

जैसे चलता है चलने दो, यह विचार कर पण्डित कल्पकने अपनी स्त्रीके कथनपर उपेक्षा कर दी (यानी पत्नीके वचनपर कुछ गौर न की) क्योंकि विवेकी पुरुष स्त्री प्रधान नहीं होते, वे अपना आगा पीछा देख कर कार्य किया करते हैं, कल्पककी स्त्री जब बहुत हठ करने लगी तो कल्पकने उसे बहुत कुछ समझाया मगर उसने एक भी न माना क्योंकि स्त्रीहठ भी एक बड़ा प्रबल हठ होता है, निदान यह कि जब किसी भी प्रकारसे स्त्री न मानी तब हारके कल्पकने उसके कपड़े राजकीय सुन्दर धोबीको धोनेके लिए दे दिये, जब कौमुदी उत्सवका दिन आया तब 'कल्पक' कपड़े लेनेके लिए सुन्दर धोबीके घर गया और सुन्दरसे अपने कपड़े माँगे, राजाकी आज्ञा न होनेसे धोबीने कल्पकको उसके कपड़े न देकर कहा कि आज तो कपड़े तैयार नहीं हुवे मगर कल सुबह आना आपके कपड़े तैयार करके देदूँगा, कल्पक फिर सुबह धोबीके घरपर गया मगर फिर भी उसे वैसा ही उत्तर मिला क्योंकि धोबी राजाकी आज्ञासे निर्भय था अत एव उसने सुबह शाम कह कर कल्पकका बहुतसा समय बिता दिया, 'कल्पक' रोजकी रोज सुबह शाम धोबीके घर जा आता है मगर धोबी सुबह शाम कह कर उसे टाल देता है, इस तरह करते हुए उसे लगभग दो वर्ष बीत गये, जब तीसरा वर्ष शुरू हुआ तो एक दिन कल्पकको यह हालत देख कर धोबीके ऊपर अत्यन्त क्रोध आगया अत एव वह धोबीके घर जाकर बोला— अरे सुन्दर अधम! तूने आज तक मुझसे दिनमें दो दो वक्त नौकरके समान हाजरी भरवाई और मेरे वस्त्र भी पचा गया मगर अब याद रखना यदि मैं अपने वस्त्र तेरे खूनमें रंग कर न लूँ तो मेरा नाम कल्पक न कहना, यह कह कर कल्पक अपने घर चला गया, एक दिन महा साहसी 'कल्पक, अर्ध रात्रिके समय एक छोटीसी छुरी

लेकर धोबीके घरपर गया और उसके घरमें घुस कर भृकुटी चढ़ा कर और यमराजकी जीभके समान उस छोटीसी पैनी छुरीको हाथमें लेकर धोबीसे बोला—अरे नीच धोबी! मैं दो वर्ष तक सेवकके समान दिनमें दो दफ़ा तेरी हाजरी भरता हूँ मगर तो भी तूने मेरे वस्त्र न दिये, बोल अब मेरे वस्त्र देता है या नहीं? । कल्पकको क्रोधसे राक्षसके सदृश और उसके हाथमें यमराजकी जीभके समान लपलपाती तीक्ष्ण छुरी देख कर थरथराता हुआ धोबी अपनी स्त्रीसे बोला—सन्दूकमेंसे निकाल कर इनके कपड़े दे दे, धोबीकी स्त्रीने जब 'सन्दूक' खोल कर कल्पकके कपड़े निकाल दिये तब क्रोधान्ध कल्पकने पेठेके समान धोबीका पेट चीर डाला, धोबीके पेटमें छुरी लगते ही उसके पेटसे फुवारेके पानीके समान रुधिर बहने लगा, कल्पकने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिए उन कपड़ोंको उस रुधिरमें रंग डाला, इस प्रकार अपने पतिकी भयानक मृत्यु देख आँखोंसे अश्रु बहाती हुई धोबन बोली—निरापराधी मेरे पतिको क्यों मारते हो? आपके कपड़े राजाकी आज्ञा न होनेसे आज तक नहीं दिये गये, यह बात सुन कर कल्पक एकदम चौंक पड़ा और वह बात याद आगई कि ओहो उस दिन मैने राजाका वचन स्वीकार नहीं किया इसी लिए राजाने अपनी अवज्ञा समझ कर यह प्रपंच रचा है। खैर अब तो जो कुछ होना था सो हुआ मगर अब तो बचनेका उपाय यही है जब तक सुबह धोबीके मारनेका मेरा अपराध जाहिर न हो उससे पहले ही राजा नन्दसे जाकर मिलूँ। यह विचारके प्रातःकाल होनेपर शीघ्र ही बिना बुलाये 'कल्पक' राजसभामें गया। अभी तक ठीक ठीक दरबार भरा भी नहीं था, जब कल्पक बिना ही बुलाये राजसभामें गया तो उसे देख राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और फिर उसे अपना प्रधान मंत्री बनानेकी प्रार्थना की, 'क-

ल्पक' बड़ा दक्ष और अवसरका जानकार था अत एव उसने उसी वक्त राजाका कहना मंजूर कर लिया और प्रधान मंत्रीकी मुद्रा धारण कर राजा नन्दकी बराबर बैठ गया, राजाने कल्पकका बड़ा आदर सत्कार किया और कल्पकको गुरु समान समझने लगा, राजाके मनमें घने दिनोंसे कै बातोंकी शंकायें थीं उन शंकाओंको निवारण करनेवाला आज तक कोई पण्डित न मिला था, अब इस अवसरको प्राप्त करके राजा अपने आपको धन्य समझता हुआ उन शंकाओंको कल्पकसे पूछने लगा, कल्पकने राजाकी शंकाओंको जड़से निर्मूल कर दिया और वाक्चातुरीसे राजाको ऐसा प्रसन्न कर दिया कि जैसे विद्या गुरु विद्या देकर विद्यार्थीको करता है, राजा और कल्पक जब एक ही सिंहासनपर बैठे हुए परस्पर आपसमें बातचीत कर रहे थे तब इतनेमें ही बहुतसे धोबी लोग मिल कर राजसभामें कल्पक कृत उस अन्यायकी पुकार करनेको आये मगर जब कल्पकको राजसभामें राजाकी बराबर उसके ही सिंहासनपर बैठा देखा तो सब ही धोबी बिचारे चुपाचुप पीछे लौट गये, उन्होंने अपने मनमें यह विचार किया कि जो हमारा अपराधी है वह तो राजमान्य होकर राजाके पास बैठा है, यदि हम इस वक्त कुछ फरियाद करेंगे तो न जानें कुछ और ही अनर्थ होजाय, यह विचार कर बिचारे डरके मारे सब ही पीछे चले गये, राजाने जिसे पहले अपना प्रधान मंत्री बनाया हुआ था कल्पकको मंत्रीमुद्रा मिलनेसे अब उसे रुकसद कर दिया, जबसे कल्पकने राजा नन्दका प्रधान मंत्रीपद स्वीकार किया था तबसे राजा नन्दकी राज्यलक्ष्मी दिनपर दिन बढ़ने लगी, निदान यह कि कल्पक मंत्रीने अपने बुद्धिबलसे राजा नन्दका राज्य समुद्र पर्यन्त बढ़ा दिया, कल्पकके बुद्धिरूप जलसे सींचा हुआ राजा नन्दका विक्रमरूप वृक्ष ऐसा पल्लवित और पुष्पित होगया कि उसने नन्दके

यशरूप सौरभसे दशों ही दिशाओंको सुरभित कर दिया, राजा नन्दके प्रतापरूप अग्निको बढ़ानेमें उस नवीन मंत्रीकी बुद्धि प्रचण्ड वायुके समान आचरण करती थी, निदान उस नवीन मंत्रीके प्रभावसे राजा नन्दकी चारों खूंटमें अखण्डाज्ञा प्रवर्त्तने लगी । इधर जो पहला मंत्री अपने मंत्रीपदसे भ्रष्ट हुआ था वह अब रातदिन कल्पकके छिद्र देखने लगा और जब राजसभामें आता है तो भूतके समान बड़ी तटस्थ वृत्तिसे आचरण करता है, मगर जबसे उसके पद-पर कल्पक नियत हुआ है तबसे उसका दिल आवेकी आगके समान अन्दर ही अन्दर सिलगता रहता है, पुराने मंत्रीके हाथ जब कल्पकका कोई भी छिद्र न आया तो उसने यह उपाय सोचा ।

एक दिन कल्पककी दासीको बुलवा कर बहुतसा धन देकर उसे अपने वशमें कर ली और उससे कह दिया कि जो जो चेष्टायें कल्पकके घरपर रात दिनमें होतीं हों सो सब समाचार प्रतिदिन मेरे पास दे जाया कर, दासी लोभके वश होकर वैसा ही करने लगी । कल्पक अब बड़ा कुटुंबी होगया था, उसके कई लड़के थे जिसमें एक दिन बड़े लड़केकी शादी करनेका अवसर आया, कल्पकने विचारा—शादीके समय राजाको अन्तेउर सहित अपने घरपर लाऊँ और राजाको राजचिन्ह वगैरह भेट देकर उनका अच्छी तरहसे स्वागत करूँ । यह विचार कर कल्पकने राजचिन्ह छत्र चामरादि बनवाने शुरू कर दिये । यह बात हम पहले ही लिख आये हैं कि कल्पककी दासीको पुराने मंत्रीने कुछ धन देकर फोड लिया था अत एव वह प्रतिदिनका समाचार कल्पकके घरका उस पुराने मंत्रीसे कह जाती थी, इस वक्त कल्पकके घर राजचिन्ह बननेका समाचार सुन कर पुराने मंत्रीने अवसर पाके राजाको एकान्तमें कहा—राजन्! इस वक्त मैं आपका मंत्री नहीं हूँ, आपका मान्य नहीं हूँ और आपकी मेहेरबानी भी मुझपर

कुछ कम ही देख पड़ती है, तथापि मैं कुलीन हूँ और स्वामिभक्त हूँ इस लिए आपके हितकी बात अवश्य करूँगा, आपके प्रिय मंत्रीने जो कुछ इस वक्त प्रारम्भ किया है आपको कुछ मालूम है? कल्पकने अपने घरपर गुप्त रीतीसे छत्र–चामरादि राजचिन्ह बनवाने शुरू किये हैं, इसका अन्तिम परिणाम क्या निकलेगा इसको आप स्वयं ही विचार लें, मैंने इसारा मात्र कर दिया है और वह भी आपका भक्त होनेसे कहना ही पड़ा, क्योंकि मैंने आज तक आपका अन्न खाया है केवल इसी बातका खयाल आगया अन्यथा कल्पकके साथ मेरा किसी भी प्रकारका द्वेष नहीं है, मैं स्वामिके ही दिये हुए ग्राससे वृद्धिको प्राप्त हुआ हूँ इस लिए अपने स्वामिका अहित मुझसे नहीं देखा जाता और कदाचित् आपको मेरे कहनेपर विश्वास न हो तो खुशीसे आप कल्पकके घर अपने चर पुरुष भेज कर खबर मँगवालें, जिससे आपको मेरा कहना सत्यासत्य और आपके प्रिय मंत्रीने क्या प्रपंच रचा हुआ है यह सब मालूम हो जाय। राजा नन्द कल्पकको बड़ा विश्वासपात्र और धर्मात्मा समझता था इतना ही नहीं बल्कि कल्पकको गुरु बुद्धिसे देखता था, मगर जब पुराने मंत्रीसे कल्पकके बारेमें पूर्वोक्त बात सुनी गई तब राजाके दिलमें कुछ ढिचुपिचु होने लगा, अत एव कल्पकके घरका भेद लेनेके लिए उसके वहाँ पोशीदा आदमी भेजे गये, पुराने मंत्रीने जो राजासे कहा था कि कल्पकके घर पै छत्र–चामरादि राजचिन्ह बन रहे हैं न जाने इसका क्या परिणाम होगा, उन राजपुरुषोंने भी कल्पकके घर राजचिन्ह बनते देख राजासे वैसा ही आ कहा, अब इस बातका असर यहाँ तक पहुँचा कि राजाका मन कल्पककी तर्फसे एकदम पलट गया, राजाने क्रुधित होकर बहुत गहरा एक कूवा खुदवाया और कल्पकसे कुछ भी समाचार न पूछ कर उस सूके कूवेमें

कल्पकको कुटुम्ब सहित डलवा दिया, मगर कल्पक बड़ा चतुर और दक्ष था अत एव वह इस बातको भली भाँति समझ गया कि यह प्रपंच उसी दुष्ट पुराने मंत्रीका है जो अपने पदसे भ्रष्ट होकर मुझे शत्रुकी दृष्टिसे देखा करता था, सकुटुम्ब कल्पकके लिए उस अन्ध कूपमें कुछ थोड़ासा अन्न और पानी पहुँचाया जाता था, वह अन्न भी निकृष्ट और इतना अल्प कि जिस्से एक आदमीका भी पेट न भर सके, उस थोड़ेसे कुत्सित भोजनको देख कल्पक अपने कुटुम्बसे बोला—देखो भई यह जो थोड़ासा कंगनी कोद्रवका भात ऊपरसे खानेके लिए आता है यदि हम सब इस भातको हिस्सेसे बाँट कर खावें तो गिनतीके दाने ही हिस्सेमें आयँगे ग्रास कवलियोंकी तो कथा ही क्या? इस लिए सबके सब विन आई मौत क्यों मरते हो? एक काम करो जो तुम्हारे अन्दर उस दुष्ट पुराने मंत्रीसे वैरका बदला लेनेको समर्थ हो वह एक ही जना इस भोजनको खाकर जीवो, बाकीके परलोक निवासी बनो, क्योंकि इस वक्त सब कुटुम्बका नाश होनेसे वंशविनाश होनेका अवसर आया है, कल्पकके पुत्र बोले-पिताजी आपके सिवाय हममें दुश्मनसे वैर लेनेको कोई भी समर्थ नहीं अत एव आप ही इस भोजनको खाकर शत्रुसे बदला लो क्योंकि आप सब बातोंमें समर्थ हैं, यदि आप जिन्दा रहेंगे तो संभव है कि वंश प्रनाली भी कायम रह सकेगी, अपने कुटुम्बके आग्रहसे कल्पकने यह बात मंजूर कर ली और उन सबको अनसन करा कर देवलोकके पाहुने बना दिये । कल्पकको जब बहुतसे दिन इसी तरह अन्ध कूपमें पड़े हुवे निकल गये तब उसके मारे जानेकी अफवा दूर दूर तक फैल गई ।

एक दिन नन्दके शत्रु राजाओंने कल्पक मंत्रीको मरा सुन कर पाटलिपुत्र नगरको आ घेरा और नन्दको निर्मूल कर देनेकी ठान

ली, जब शत्रु राजाओंने पाटलिपुत्र नगर पर घेरा डाल दिया तब नन्दकी प्रजा अतिभयातुर होकर क्षोभको प्राप्त होने लगी और राजा नन्दकी भी यह हालत होगई जैसे दाह ज्वरातुर बिमार आदमीकी होती है, अब इस अवस्थामें राजा विचार करने लगा कि जब तक 'कल्पक' मेरा मंत्री रहा तब तक सिंह गुफाके समान मेरे नगरपर किसी भी शत्रु राजाने आक्रमण नहीं किया, आज उस एक कल्पकके विना मेरे नगरकी यह दुर्दशा होनेका अवसर आया, यदि आज मंत्री कल्पक होता तो नगरकी यह दुर्दशा कदापि न होती, खैर अब इन विचारोंसे सरा अब तो उस अन्ध कूपमें खबर निकालनी चाहिये कल्पक जीता है या नहीं, यदि वह महात्मा जीता होगा तो इस उपद्रवको शान्त करनेके लिये वही समर्थ है अन्य नहीं, क्योंकि हाथीका भार हाथी ही उठा सकता है, यह विचार कर राजाने नौकरोंको आज्ञा दी कि जलदी खबर लाओ कूवेमें कल्पक जीता है या नहीं? । नौकरोंने खबर निकाल कर कहा हुजूर कूवेमें कोई आदमी अन्नपानी तो अभी तक ग्रहण करता है, परन्तु यह मालूम नहीं कि कौन जिन्दा है और कौन मरा है, राजाकी आज्ञा पाकर राजपुरुषोंने उस कूवेके अन्दर रस्सा बाँध कर एक माँचा डाला, उस माँचे पर बैठा कर कल्पकको कूवेसे बाहर निकाला गया परन्तु उस वक्त कल्पकका शरीर पके हुए पत्तोंके समान पीला पड़ गया था और हलने चलनेकी भी ताक़ात न रही थी, राजा अपने निधानके समान कल्पकको जिन्दा देख कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, कल्पकको पालकीमें बैठा कर राजाने किलेके ऊपर फिरवाया । इसका मतलब यह था कि शत्रु लोग कल्पकको जिन्दा देख कर डर जावें, मगर यह काररवाई देख कर शत्रुओंका और भी अधिक होसला बढ़ गया, उन्होंने समझा कि कल्पकको मरे तो घने दिन होगये अब यह नन्द

बिलकुल निर्बल होगया है इसीसे बनावटी कल्पक दिखा कर हमें डराता है, यह समझ कर शत्रुओंने अधिक उपद्रव करना शुरू कर दिया, जब इस तरहसे बात बढ़ने लगी तब कल्पकने एक पत्र लिख कर एक दूतको शत्रु–सैन्यमें भेजा। उस पत्रमें कल्पकने यह लिखा था–मेहेरबान! जो आदमी आप लोगोंको सहमत हो उस आदमीको नावमें सवार कर गङ्गाके बीचमें भेजो और इधरसे मैं भी नावमें बैठ कर गङ्गाके मध्यमें आता हूँ वहाँ पर तुम्हारे आदमीके साथ सन्धि की जायगी, अथवा जैसा आप लोगोंको इच्छित होगा वैसा ही किया जायगा। कल्पकका यह पत्र वाँच कर शत्रु राजाओंके दिलमें यह बात तो निश्चय होगई कि कल्पक जिन्दा है, बुद्धिमान कल्पकको जिन्दा जान कर शत्रु राजाओंने सन्धि करनेके लिए अपने प्रधान मंत्रीको नावमें बैठा कर गङ्गा नदीके मध्य भागमें भेजा। इधरसे कल्पक भी एक छोटीसी डोंगीमें बैठ कर गङ्गाके बीचमें गया, गङ्गाके मध्य भागमें दोनों मंत्री इस प्रकार मिले जैसे कभी कभी गगनमण्डलमें वक्र और अवक्र ग्रह मिलते हैं, किसी आदमीके हाथमें इक्षुके गन्ने देख कर उसकी ओर अंगुली करके 'कल्पक' उस प्रतिपक्षी मंत्रीसे बोला–देखो इनका मूल और अन्तका भाग काट दिया जाय तो शेष क्या रहता है? । प्रतिपक्षी मंत्री सन्धिविग्रह कार्यमें बड़ा विद्वान् और दक्ष भी था तथापि पूर्वोक्त प्रश्नसे वह कल्पकके आशयको न जान सका। कल्पकका आशय इससे यह था कि जैसे मूल और उपरि भागसे इक्षुकी वृद्धि होती है वैसे ही दो प्रकारकी सन्धिद्वारा क्षत्रीय सन्तति बढ़ती है, जिसमें एक तो सत्य सन्धि होता है–जो कुछ ठराव दोनों पक्षोंकी ओरसे हुए हों उससे अन्यथा न होना, दूसरा प्रपंच सन्धि, जिसे मैं भली भाँति जानता हूँ इस लिए इससे तो तुम लोग विजय पा ही नहीं सकते और सत्य सन्धि

तुम्हारे साथ हो नहीं सकती क्योंकि नन्दको तुम लोगों पर पूर्ण अ-विश्वास है, जिस तरह इक्षुका मूल और अन्त भाग काटने पर उसका हाल होता है वैसा ही नन्द भूपतिसे दोनों प्रकारकी सन्धि न होनेसे तुम्हारा हाल होगा। उसी समय गङ्गाके किनारे एक आभीरी दहीका हण्डा लिए जा रही थी, किसीने उसके हण्डेमें दण्डा मारा, इससे उसका हण्डा फूट जानेसे सारा दही जमीन पर बिखर गया और उसे कौवे वगैरह पक्षी खाने लगे, यह देख उसकी ओर हाथ उठा कर कल्पकने उस मंत्रीकी तर्फ इसारा किया मगर कल्पकके आश-यको फिर भी वह न जान सका, कल्पकका आशय यह था कि जिस तरह दण्डा लगनेसे यह दहीका हण्डा फूट गया है और दही बिखर जाने पर कौवे आदि पक्षी जैसे इसका भक्षण कर रहे हैं वैसे ही तुम्हारा पक्षसंहतिरूप दही भाजन मेरे बुद्धिबल दण्डसे आहत होकर फूट जायगा और तुम्हारी सैन्यरूप दही सब बिखर जायगा। तीसरी दफा कल्पकने अपनी डौंगीमें बैठे बैठे उस मंत्रीकी नावको तीन प्र-दक्षिणा दे दीं, परन्तु वह प्रधान मंत्री इसका भी भाव न समझा, इसका अभिप्राय यह था कि जिस तरह मेरी नावने तुम्हारी नावको चारों तर्फसे आवृत कर लिया है इसी तरह हमारे सैन्यसे तुम्हारा सैन्य चारों ओरसे घिर जायगा। इन तीनों ही संज्ञाओंके भावको न जान कर और आश्चर्यमें मग्न होकर वह प्रतिपक्षी मंत्री कल्पकके मुँहकी ओर देखता रह गया, 'कल्पक' उस मंत्रीसे और कुछ बात न करके अपने स्थान पर चला आया और वह विपक्षी मंत्री भी वि-लक्ष होकर अपने शिबिरमें पीछे लौट गया, जब वह मंत्री अपने शिबिरमें जा पहुँचा तब उस मंत्रीसे उन राजाओंने कल्पकसे क्या सलाह की और उसने तुमसे क्या कहा? यह पूछा, आश्चर्यमें मग्न हो और विलक्ष होकर वह मंत्री बोला—सलाह क्या करनी थी उ-

सने तो मेरे साथ कुछ भी बात न करी, उसने दोतीन संज्ञायें तो की थीं मगर मैं तो कुछ समझा नहीं, मुझे तो कल्पक असम्बद्ध प्रलापी और मूर्ख ही मालूम पड़ता है, फिर भी उन्होंने पूछा कि भई पत्र लिख कर बुलवाया था कुछ तो कहा ही होगा सर्वथा बातचीत न की हों यह तो हो ही नहीं सकता, मंत्रीके मुँहसे वारंवार यही निकलता रहा कि मैं कल्पकके भावको बिलकुल नहीं समझा। जब इस प्रकार वारंवार पूछने पर भी मंत्रीने कुछ न बताया तो नन्दके विपक्षि राजाओंके दिलमें यह बात अच्छी तरह ठस गई कि कुछ लोभ लेकर यह मंत्री कल्पकके साथ अवश्य मिल गया है इसीसे यह उधरकी कुछ बात नहीं बताता है, यह निश्चय करके वे सब ही विपक्षि नृप अपने प्राणोंको बचानेके लिए सैन्य सहित नन्दकी सीमा छोड़ कर चारों दिशाओंमें भाग गये। कल्पककी बुद्धिके प्रयोगसे शत्रु राजाओंके भाग जाने पर जो कुछ वहाँ पर हाथी घोड़ा कोश खजाना शेष रह गया था वह सब नन्दने अपने कबजे कर लिया। कल्पकके कहने पर पुराने मंत्रीकी चालबाजी राजा नन्दको मालूम होगई थी इस लिए राजाने क्रुधित होकर उसे पूर्ण शिक्षा दी और कल्पकके ऊपर पूर्ववत् पूज्य बुद्धि रक्खी।

नन्दश्रियां रक्षणसौविदल्लः, सुधीर्नयोपायनदीनदीनः।
क्ष्मां कल्पको नन्दनरेश्वराज्ञा, नियन्त्रितां मन्त्रिवरश्चकार ॥१॥

॥ उन्नीसवाँ परिच्छेद ॥

श्री स्थूलभद्र ।

कल्पकने फिर अपनी शादी कर ली थी अत एव उसके पुत्र पौत्रादि सन्तति बहुत होगयी थी, उसकी मृत्युके बाद भी उसके वंशज ही नन्द राजाकी मंत्री मुद्राको धारण करते रहे । क्रमसे नन्दकी राजगद्दी पर उनके वंशमें जब सात दूसरे नन्द राजा और कल्पकके वंशमेंसे उनके मंत्री हो चुके तब तीन खण्डकी राज्यलक्ष्मीको भोगनेवाले श्रीपतिके समान प्रचण्ड शासनवाला नवम नन्द हुआ और उसका मंत्री कल्पक वंशीय बुद्धिका धाम शकटाल नामा हुआ, शकटाल मंत्री भी कल्पकके समान बड़ा धर्मीष्ट और परम श्रावक था, शीलालंकारको धारण करनेवाली लक्ष्मीवती नामकी शकटालकी पत्नी थी । लक्ष्मीवतीकी कुक्षीसे पैदा हुए शकटाल मंत्रीके दो पुत्र थे, उनमेंसे विनयादि गुणयुक्त अस्थूल बुद्धिवाला बड़ा पुत्र स्थूलभद्र नामा था और मातापिताकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाला श्रीयक नामका छोटा पुत्र था, श्रीयक अपने पिताके साथ हमेशा राजसभामें जाया करता था इस लिए वह नन्द राजाका बड़ा प्रीतिपात्र था । उसी नगरमें रूपसे उर्वशीके समान और दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंके दिलको हरनेवाली कोशा नामकी एक वेश्या रहती थी, उस वेश्याके घर पर रातदिन अनेक प्रकारके विषयसुखोंका अनुभव करता हुआ शकटाल मंत्रीका बड़ा पुत्र स्थूलभद्र रहता था, और छोटा शकटालपुत्र

'श्रीयक' जब कुछ होशियार हुआ तब उसे राजा नन्दने अपना बड़ा विश्वासपात्र और प्रीतिपात्र समझ कर अङ्गरक्षकके स्थान पर नियत कर लिया।

पाटलिपुत्र नगरमें एक 'वररुचि' नामका ब्राह्मण रहता था, वह व्याकरण साहित्य काव्य कोशादि शास्त्रोंमें बड़ा कुशल और कविता बनानेमें भी बड़ा दक्ष था, 'वररुचि' रोजके रोज अपने रचे हुए एकसौ आठ काव्य राजाको रंजन करनेके लिए राजसभामें आकर हमेशा सुनाया करता था, राजा उसकी कविता सुन कर प्रसन्न भी होता था तथापि वररुचिको कुछ दान नहीं दिया जाता था, राजाके दिलमें यह बात बैठी हुई थी कि जब तक शकटाल मंत्री अपने मुँहसे कविकी प्रशंसा न करे तब तक पारितोषिक नहीं देना, शकटाल मंत्री वररुचिको मिथ्या दृष्टी समझ कर उसकी प्रशंसा नहीं करता था। वररुचिको जब यह बात मालूम हुई कि शकटाल मंत्रीके प्रशंसा न करनेसे ही मुझे पारितोषिक नहीं मिलता तब उसने मंत्रीराजकी पत्नीकी सेवा चाकरी करनी शुरू की क्योंकि घरकी सरकारका हुक्म राजसत्तासे भी अधिक माना जाता है। बहुतसे दिनों बाद एक दिन शकटालकी पत्नी लक्ष्मीवती बोली–वररुचि! कुछ कामकाज हो तो कहना, वररुचि बोला–मैं और कुछ नहीं चाहता केवल इतना ही चाहता हूँ कि एक दफा शकटाल मंत्री राजसभामें मेरी कविताकी प्रशंसा कर दें, लक्ष्मीवतीने यह बात मंजूर कर ली और जब मंत्रीराज घर पर आये तब उन्हें उस बातके लिए कहा गया, मंत्रीराज बोले मिथ्या दृष्टीके वचनकी प्रशंसा मैं अपनी जबानसे कैसे करूँ? । मंत्रीराजने हरचंद यह चाहा कि इस बातको मैं मंजूर न करूँ तथापि स्त्रीके हठसे उन्हें मंजूर करना ही पड़ा क्योंकि कहावत भी है कि–अन्ध स्त्री बाल मूर्खाणा माग्रहो बलवान् खलु। अगले दिन जब वररुचि राज-

सभामें आकर कविता बोलने लगा तब शकटाल मंत्री बोला–देखो कैसी मधुर कविता है, यह सुनते ही राजाने वररुचि कविको एकसौ आठ सौनेकी मोहरें प्रदान की, क्योंकि राजमान्य पुरुषोंके वचन भी बड़े कीमती होते हैं, जब रोजकी रोज इस प्रकार एकसौ आठ सौनेकी मोहरें दी जाने लगीं तब एक दिन शकटाल मंत्री राजा नन्दसे बोला–राजन्! प्रति दिन एकसौ आठ सौनेकी मोहरें वररुचिको क्यों दी जाती हैं? राजा बोला–तुम्हारी प्रशंसासे हम वररुचिको प्रतिदिन एकसौ आठ सुवर्णकी मोहरें देते हैं, यदि हम स्वयं देते तो पहलेसे ही न देते, मंत्री बोला–पृथ्वीनाथ! मैंने कोई वररुचिकी प्रशंसा नहीं की है मैंने तो केवल परके बनाये हुए जो आपके सामने काव्य बोलता है उसकी ही प्रशंसा की है, जब मंत्रीने यह कहा कि वररुचि परके रचे हुए काव्य सुनाता है तब राजा बोला–क्या यह बात सत्य है? शकटाल मंत्री बोला–हुजूर! जो काव्य 'वररुचि' सभामें सुनाता है उन काव्योंको तो लड़कियां भी सुना सकती हैं, यदि आपको देखना है तो कल सुबह जब वररुचि सभामें आकर काव्य सुनावेगा तब आपको दिखलाऊँगा । शकटाल मंत्रीके सात लड़कियां थीं, उनके नाम ये थे–यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, एणिका, वेणा और रेणा, बड़ी लड़की ऐसी बुद्धिमती थी कि वह एक दफा सुने हुए काव्यको याद कर लेती थी, दूसरी दो दफा सुननेसे कठस्थ कर लेती थी, तीसरी तीन दफा सुननेसे, यावत् सातवीं सात दफा सुननेसे धार लेती थी । प्रातःकाल होने पर मंत्रीराजने राजसभामें एक तर्फ कन्नाथ तनवाके उसके अन्दर अपनी सातों ही लड़कियोंको ला बैठाया । जब वररुचि सभामें आकर अपने बनाये हुए एकसौ आठ काव्य सुना चुका तब शकटाल मंत्रीने राजाकी ओर इसारा किया कि अब आप इन्हीं काव्योंको लड़कियोंके मुखसे सुन लो, राजासे

यह इसारा कर शकटाल मंत्रीने अपनी बड़ी लड़कीको काव्य सुनानेकी आज्ञा की, पिताकी आज्ञा पाकर लड़कीने वररुचिके कहे हुए काव्य सब ही फटाफट कह सुनाये, यावत् सातों ही लड़कियोंने क्रमसे वररुचिकी कविता सभामें कह सुनायी, यह बनाव देख कर 'राजा' एकदम वररुचिके ऊपर रुष्टमान होगया और जो दान उसे प्रतिदिन दिया जाता था वह बन्द कर दिया गया, क्योंकि राजाओंकी कूँची मंत्री लोगोंके हाथमें होती है।

इधर जबसे वररुचिका राजाकी तर्फसे अपमान हुआ और उसे सौनेकी मोहरें मिलनी बन्द होगई तबसे उसने कुछ और ही उपाय निकाला, वह यह है कि वररुचिने गङ्गा तट पर एक 'यंत्र' लगाया और उस यंत्रमें ऐसी खूबी रक्खी कि उस यंत्रके नीचे पानीमें संध्या समय गङ्गा तट पर जाकर एक कपड़ेमें बाँध कर एकसौ आठ सौनेकी मोहरें रख देता है और प्रातःकाल जनसमुदायके इकट्ठा होने पर गङ्गाकी स्तुति करके उस यंत्रको दबाता है, तो यंत्रके दबते ही वे सौनेकी मोहरें उसके हाथोंमें उछल कर आ पड़ती हैं। जब बहुतसे दिन इस प्रकार निकल गये तो लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और सारे नगरमें वररुचिकी प्रशंसा होने लगी। कुछ दिनों बाद यह बात फैलती फैलती राजा तक भी पहुँच गई। जब राजाने मंत्रीसे यह बात की तो मंत्री बोला—राजन्! यह बात सत्य होगी कि वररुचिकी कविता सुनके गङ्गा प्रसन्न होकर उसे रोजकी रोज एकसौ आठ सौनेकी मोहरें देती है तो कल हम खुद वहाँ चल कर देखेंगे सो मालूम हो जायगा। राजाने यह बात मंजूर कर ली। मंत्रीने उस दिन दो पहरसे ही गङ्गाके किनारे उस यंत्रके समीप ही वहाँका हाल जाननेके लिए गुप्त रीतीसे चर पुरुषोंको भेज दिया। जब संध्या समय होगया और कुछ कुछ अन्धकार भूमि पर छाने लगा तब वररुचिने

उस यंत्रके पास आकर और चारों ओरको नजर घुमा कर कपड़ेमें बँधा हुआ कुछ पानीके अन्दर दबा दिया। मंत्रीके भेजे हुए राजपुरुषोंने जो वहाँ ही उस यंत्रके पास सरोंमें छिपे हुए खड़े थे वररुचिकी सब ही काररवाई देखी और जब वररुचि अपने घर चला गया तब जो कुछ वररुचि पानीमें दबा गया था उसे निकाल कर उन राजपुरुषोंने शकटाल मंत्रीको जा दिया। प्रातःकाल होने पर वररुचिकी चेष्टा देखनेके लिए राजा नन्दको साथ लेकर मंत्रीराज शकटाल गङ्गा तट पर आ पहुँचा। राजा और मंत्रीका आना देख नगरवासी बहुतसे मनुष्य गङ्गा किनारे आ उपस्थित हुए। वररुचि अपने टाइम पर वहाँ आकर और मंत्री सहित राजा तथा प्रजाको देख कर मारे खुशीके अहंकारमें आकर उच्च स्वरसे गङ्गाकी स्तुति करने लगा। स्तुति किये बाद वररुचिने उस यंत्रको पाँवसे दबाया मगर उस दिन गङ्गा माताने प्रसन्न होकर उसे एकसौ आठ सौनेकी मोहरें न दीं। वररुचिने फिरसे यंत्रको दबाया मगर वहाँसे कुछ भी प्राप्ति न होनेसे वररुचिका कलेजासा निकल गया और पानीके अन्दर घुस कर अपनी ग्रन्थीको टटोलने लगा, मगर पानीमें क्या मिलना था?। वररुचि वज्राहतके समान विलक्ष होकर मौनपूर्वक खड़ा रहा। वररुचिकी यह दशा देख शकटाल मंत्री बोला—क्या तेरा स्थापन किया हुआ भी धन गङ्गा नदी नहीं देती? जो तू वारंवार पानीमें ढूँढ रहा है। जब वररुचि अपनासा मुँह लेकर कुछ भी न बोल सका तब मुस्करा कर शकटाल मंत्री बोला—वररुचि! ले पैछान कर लेले ये तेरी ही मोहरें हैं न? यों कह कर मंत्रीने कपड़ेमें बँधी हुई एकसौ आठ पीली पीली सौनेकी मोहरें वररुचिको दे दीं। जिस वक्त शकटाल मंत्रीने राजा और जनसमुदायके समक्ष वररुचिको उसका द्रव्य दिया उस वक्त वररुचिकी मरनेसे भी अधिक खराब दशा हो

गई क्योंकि जो कुछ कूट प्रयोगसे लोकोंमें उसकी प्रतिष्ठा जमी थी वह सब ही शकटाल मंत्रीके प्रयोगसे ऐसी धोई गई जैसे वर्षाकालके मेघसे आकाशकी धूली धोई जाती है । यह बनाव देख राजा विस्मित होकर बोला—यह क्या बना? कुछ मेरी समझमें नहीं आया । मंत्री बोला—हुजूर! लोगोंको ठगनेके लिए शामके वक्त यह सौनेकी मोहरें पानीके अन्दर यंत्रमें रख जाता था और प्रातःकाल गङ्गाकी स्तुति करके उस यंत्रको दबाता था जिससे वे मोहरें ऊपर उछल आती थीं । तुमने भली प्रकार इसका प्रपंच जान लिया, यों कहता हुआ राजा मंत्रीके साथ अपने स्थान पर चला गया, और भी लोग अपने २ घर चले गये । जिस दिनसे वररुचिका लोकमें यह अपमान हुआ उस दिनसे 'वररुचि' शकटाल मंत्रीके छिद्रान्वेषण करने लगा, पर जब कुछ भी पार न बसाई तब वह शकटालकी दासीसे मिल गया, दासीके द्वारा 'वररुचि' शकटालके घरकी सब बातें जान लेता है मगर शकटालको पेचमें लेनेकी कोई बात आज तक वररुचिके हाथमें न आई । एक दिन शकटालकी दासीने वररुचिको यह समाचार दिया कि शकटाल मंत्रीके छोटे पुत्र श्रीयकका विवाह होनेवाला है और इसी लिए शकटालके घर राजा नन्दको भेट करनेके लिए छत्र चामरादि और शस्त्र बन रहे हैं । यह छल प्राप्त करके वररुचिने एक श्लोक बनाया और वह श्लोक शहरके लड़कोंको कुछ खाद्य वस्तुयें देकर पढ़ा दिया । वह श्लोक यह था—

न वेत्ति राजा यदसौ शकटालः करिष्यति ।
व्यापाद्य नन्दं तद्राज्ये श्रीयकं स्थापयिष्यति ॥ १ ॥

अर्थात्—जो शकटाल करनेवाला है सो राजा नहीं जानता, नन्दको मार कर उसके राज्य पर अपने पुत्र श्रीयकको स्थापन करेगा । नगरके लड़कोंने यह बात सारे शहरमें फैला दी, जब सारे नगरमें

यह बात मशहूर होगई तब परंपरासे राजाके कान तक भी जा पहुँची । शकटाल मंत्री ऊपर राजाका पूर्ण विश्वास भी था तथापि सारे नगरमें यह बात उड़ी हुई सुन कर राजाके दिलमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि जो बात लड़कोंके मुँहसे और स्त्रियोंके मुँहसे प्रसिद्धिको प्रात होती है और जो औत्पातिकी भाषा होती है प्रायः ये सब अन्यथा नहीं होतीं । यह विचार कर राजाने पहले नन्दके समान ही शकटाल मंत्रीके घर पर अपने नौकरोंको भेजा, नौकरोंने भी शकटालके घर पर जिस प्रकार शस्त्रादि बनते देखे वैसा ही राजासे आ कहा । राजाके दिलमें एकदम शकटाल मंत्रीकी तर्फसे वैमनस्य और अविश्वास होगया । प्रातःकाल राजसभामें आकर जब शकटाल मंत्रीने राजाको प्रणाम किया तो राजाने मारे कोपके शकटालकी ओर नज़र भरके देखा भी नहीं । शकटाल मंत्री बड़ा चतुर और अवसरज्ञ था, वह राजाका चेहरा देख कर ही समझ गया कि आज किसीने राजासे मेरी चुगली खाई है इसीसे राजा मेरे ऊपर कुपित हुआ हुआ है । राजाका मन विपरीत जान कर शकटाल उसी वक्त पीछे अपने घर पर लौट आया और घर आकर श्रीयकसे बोला—बेटा! आज किसी दुश्मनने राजाका दिल मेरी तर्फसे फेर दिया है अत एव आज खैर न समझना, निष्कारण ही आज सारे कुटुम्बका नाश होनेवाला है, हाँ यदि तू मेरा एक कहना माने तो सिवाय मेरे सारा कुटुम्ब बच सकता है, वह यह उपाय है कि जब मैं राजसभामें जाकर राजाको नमस्कार करूँ तब तू म्यानसे तलवार निकाल कर मेरा सिर काट डालना और यों कहना—स्वामीका अभक्त पिता भी मारने योग्य है, यदि तू ऐसा करे तो ही कुटुम्ब बच सकता है वरना सबको ही मरनेका समय आया है क्योंकि राजाको इस वक्त ऐसा क्रोध चढ़ा है कि वह सारे कुटुम्बको विना मरवाये नहीं छोड़ेगा । मैं तो अब

वृद्धावस्थाको प्राप्त हुआ हूँ थोड़े दिनोंमें मरना ही है यदि इस वक्त मेरे मरनेसे सारे कुटुम्बकी रक्षा होती है तो तू इस मेरे कहनेको मान ले, मेरे पीछे तू मेरे कुलका आधारभूत होगा और शत्रुसे बदला भी ले सकेगा। पिताके मुँहसे यह समाचार सुन कर श्रीयकके नेत्रोंसे अश्रु टपकने लगे और गद्गद स्वरसे बोला–पिताजी आप यह न सुनने योग्य और कर्णकटु समाचार क्यों सुनाते हो? जिस कर्मको आप मुझसे कराना चाहते हैं क्या ऐसा अकृत्यकर्म कोई नीचसे नीच भी कर सकता है?। शकटाल रोशमें आकर बोला–हाँ मैं जानता हूँ–ऐसे ऐसे विचार करके तूने वैरियोंके मनोरथ पूर्ण करने हैं, अभी तक भी मान ले इन लम्बे विचारोंको रहने दे, मैं अपने मुँहमें विष रख कर राजाको प्रणाम करूँगा इस लिए तुझे पितृहत्याका पाप भी न लगेगा। जब तक राजा मुझे कुटुम्ब सहित नहीं मरवाता है तब तक तू राजाके समक्ष मुझे मार कर इस कुटुम्बको बचा ले। शकटालने बड़ी मुस्किलसे श्रीयकको समझा कर हाँ कराई, जब शकटालने राजसभामें जाकर राजाको प्रणाम करनेके लिए अपना सिर झुकाया उसी वक्त श्रीयकने म्यानसे तलवार निकाल कर पिताका सिर छेदन कर दिया। यह हालत देख कर राजसभामें सब मनुष्य काँप उठे और राजाने बड़े मीठे वचनोंसे श्रीयकको कहा हे वत्स! तूने यह क्या दुष्कर्म किया?। श्रीयक बोला–स्वामिन्! जब आपके दिलमें यह आया कि अमुक आदमी हमारा अपराधी है तो आपके भक्तोंको उचित है कि उसे उसी वक्त शिक्षा दें। सेवकोंको अपने स्वामीके चित्तानुकूल ही बर्ताव करना चाहिये और जिस वक्त अपनेको किसीका दोष मालूम होवे तो उस पर विचार करना उचित है मगर जब अपने स्वामीको ही दोष मालूम होवे तो उस पर विचार नहीं करना, उसका तो प्रतिकार ही करना चाहिये। यह सुन कर राजा 'नन्द' 'श्रीयक' की

कमर पर थापी देकर बोला—श्रीयक! सर्वाधिकार सहित इस प्रधान मंत्री मुद्राके योग्य तू ही है अत एव इस मुद्राको ग्रहण कर। श्री-यक विनयपूर्वक राजासे बोला—स्वामिन्! पिताके समान स्थूलभद्र नामके मेरे बड़े भाई हैं और पिताकी कृपासे वे बारह वर्षसे कोशा वेश्याके घर पर रहते हैं, उनके होते हुए मैं कैसे इस मुद्राका अधि-कारी होसकता हूँ? । राजाने 'कोशा' वेश्याके घरसे स्थूलभद्रको बुलवा कर उसे प्रधान मंत्रीकी मुद्रा यानी उसके पिताकी पदवी दे-नेको कहा, स्थूलभद्र बोला—राजन्! आलोचना (विचार) करके इस कार्यको करूँगा।

राजाने कहा—बस आज ही इस बातकी आलोचना कर लो, स्थूलभद्र वैसा ही स्वीकार कर अशोक वाड़ी (बगीचा) में गया और वहाँ जाकर विचारता है कि शयन, भोजन, स्नानादि जो जो सुखके हेतु हैं उनका सुखतया अनुभव दरिद्रीके समान नौकर लोग कभी भी नहीं कर सकते, मंत्री अमात्य पुरुषोंके हृदयमें स्वराज्य और परराज्य सम्बन्धि चिन्ताकी व्यग्रता होनेसे उन्हें प्रेमीजनोंसे मिलने तकका भी अवकाश नहीं मिलता और अपना सब स्वार्थ त्याग कर भी राजाके निमित्त ही सर्व प्रकारसे उद्यम करते हैं। तथापि कर्णसू-चक (चुगलखोर) लोग राजाको ऊँधा सीधा सिखा कर उनके ऊपर अनर्थ करा देते हैं। जिस प्रकार मनुष्य तन मनसे राजाके निमित्त प्रयत्न करता है उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुषको अपने आत्मोद्धारके लिए क्यों नहीं करना चाहिये? । बस जिस मंत्री मुद्राने मेरे पिता-श्रीके प्राणोंका अपहार कराया है वह मंत्री मुद्रा मेरेको क्या ला-भके लिए होसकती है? । धिक्कार है इन सांसारिक माने हुए सुखोंको जिनके लिए मनुष्य कृत्याकृत्यको न देख कर ऐसे ऐसे घोर पापोंको कर डालते हैं कि जिससे भवान्तरमें घोर नरकोंकी वेदनाका अनुभव

करना पड़ता है और उस दारुण वेदनाको करोड़ों वर्षों तक भोगते हुए भी छुटकारा नहीं होता । बस अब इस दुःखगर्भित लेशमात्र सुखसे सरा, अब तो आत्मोद्धारके लिये कुछ प्रयत्न करना उचित है । स्थूलभद्रने यह विचार कर वहाँ बैठे बैठे ही सिरके केशोंका लोच कर डाला और उसके पास जो रत्न कम्बल था उसकी डस्सियें खोल कर रजोहरण (ओघा) बना लिया । इस अवस्थामें महाशय 'स्थूलभद्र' राजसभामें जाकर राजासे बोले—मैंने लोच कर लिया है । राजाने 'कोशा' वेश्याके घरसे बुला कर स्थूलभद्रको यह आज्ञा दी थी कि तुम मंत्री पदवी लेनेके लिए आलोचना करके जवाब दो, मगर महात्मा स्थूलभद्रने राजसभामें आकर राजाको यही उत्तर दिया कि मैंने लोच कर लिया है, याने सिरके केशोंका लोच कर लिया । राजाको धर्मलाभ देकर महात्मा 'स्थूलभद्र' राजसभासे चलता बना, जिस तरह गुफामेंसे निकल कर केसरीसिंह जाता है वैसे ही राजसभामेंसे महात्मा स्थूलभद्रको जाते देख कर राजा चकित होगया और अपने महलके गवाक्षमें बैठ कर जिधर महात्मा स्थूलभद्र जाता था उस ओर देखने लगा कि 'स्थूलभद्र' कपट करके कोशा वेश्याके घर तो नहीं जाता? । पाटलिपुत्र नगरके बाहर एक ऐसा स्थान था कि जहाँ पर नगरके मुरदे वगैरह डालनेसे दुर्गन्धका पार नहीं था. किसी भी प्रकारकी नफ़रत न करके उस स्थानके पाससे जाते हुए महात्मा स्थूलभद्रको देख कर 'राजा' अपना मस्तक धुनने लगा और विचारने लगा कि अहो!! यह तो सचमुच ही वीतराग महात्मा है, धन्य है इस महात्माको जो इस प्रकारकी दुर्गन्धके पाससे घृणा न करके जा रहा है । धिक्कार है मुझे जो ऐसे महात्माके प्रति मैंने खोटा विचार किया, इस प्रकार राजा नन्द महात्मा स्थूलभद्रका अभिनन्दन करता हुआ अपनी आत्माकी निन्दा करने लगा । महात्मा स्थूलभद्रने श्री

संभूतिविजय आचार्य महाराजके पास जाकर सामायकोच्चरण विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली। इधर जब महात्मा 'स्थूलभद्र' इस निःसार संसारको त्याग कर दीक्षा लेगये तब राजाने श्रीयककी इच्छा न होने पर भी उसे बड़े गौरवके साथ सर्वाधिकार सहित मंत्रीपदसे विभूषित किया, श्रीयक भी अब हमेशा राज्यचिन्ता करने लगा। जैसा पहले शकटाल मंत्रीके समय राजा नन्दका राज्य निष्कंटक था वैसा ही इस वक्त नय मार्गको जाननेवाले श्रीयक मंत्रीके समय भी रहा, श्रीयक अपने बड़े भाई स्थूलभद्रके स्नेहसे उसकी प्रिया कोशाके घर आने जाने लगा, 'कोशा' भी श्रीयकका स्थूलभद्रके समान ही विनय करती थी, एक दिन 'श्रीयक' को देख कोशा स्थूलभद्रको याद करके उसके वियोगजन्य दुःखको न सहन करके श्रीयकके सामने रोने लगी क्योंकि इष्ट वस्तुका वियोग होने पर जब वह याद आजाती है तब बड़े बड़े धृतिमानोंका भी हृदय उबल आता है।

श्रीयक बोला—आर्ये! क्या किया जाय यह सब इस पापात्मा वररुचिकी करतूत है, जिसके प्रपंचसे पिताश्रीके प्राणोंका घात हुआ और अकालोत्थितवज्राग्निके समान स्थूलभद्रका वियोग भी तुझे इसीने कराया है। उस वक्त वररुचिका राजसभामें फिरसे प्रवेश होने लगा था और कोशाकी छोटी बहन उपकोशाके ऊपर उसका कुछ अनुराग बढ़ रहा था अत एव 'श्रीयक' कोशासे बोला—'वररुचि' उपकोशा पर अनुरक्त है और उपकोशा तेरे कहनेमें चलती है, इस लिये इस नीचके साथ इस अवसरमें कुछ न कुछ प्रतिकार होसकता है, तू एक काम कर उपकोशाको कह कर वररुचिको मदिरा पीनेकी रुचि करा दे। कोशाने एक तो प्रिय वियोग करानेके वैरसे दूसरे देवरकी दाक्षिण्यतासे यह बात स्वीकार ली और उपकोशाको कह कर वररुचिको मदिरा पीनेका चसका लगवा दिया। क्योंकि स्त्रीके

वश होकर लम्पट पुरुष क्या क्या अकृत्य नहीं करते? । अब वररुचिको दारु पीनेका ऐसा चसका पड़ गया कि जब वह रातको उपकोशाके घर जाता है तब अवश्यमेव अपनी खुशीसे एक दो बोतलें मँगवाता है । रात्रिका सब ही समाचार उपकोशा अपनी बड़ी बहन कोशासे कह देती है और 'कोशा' श्रीयकसे कह देती है । शकटाल मंत्रीकी मृत्यु बाद 'वररुचि' का राजकुलमें निःशंकपने प्रवेश होगया था इतना ही नहीं किन्तु राजाकी कृपा होनेसे सारी राजसभा उसे गौरवकी दृष्टिसे देखती थी ।

एक दिन राजसभामें राजा 'नन्द' शकटाल मंत्रीके गुणोंको स्मरण करके गद्गद स्वरसे श्रीयकसे बोला–शकटाल मंत्रीकी भक्ति, शक्ति और उसकी बुद्धि आदि गुणोंका वारंवार स्मरण होता है, शकटाल तो एक ही शकटाल था, वह तो मुझे ऐसा था जैसा इन्द्रको वाचष्पति, अब शकटाल मंत्रीके विना मैं अपनी सभाको शून्य समझता हूँ । खैर अब क्या हो सकता है? दैव वशसे शकटालकी मृत्यु नाहक ही हुई । श्रीयक बोला–राजन्! क्या करें? यह सब ही काररवाई इस दुरात्मा दारु पीनेवाले वररुचिकी है । यह सुन कर राजा बोला–क्या यह वररुचि दारु पीता है? श्रीयक बोला–यदि आपको इस बातका प्रत्यय करना हो तो कल आपको राजसभामें ही सबके सामने प्रत्यय करा दूँगा । दूसरे दिन जब राजसभा भरी हुई थी श्रीयकने उस वक्त अपने नौकरसे सब सभासदोंको एक एक कमलपुष्प सूँगनेको दिलवाया । जो कमल वररुचिको दिलवाया था वह मदन फलके रससे वासित था, श्रीयकके दिलवाये हुए कमलपुष्पको राजा आदि सब ही सभासदोंने सूँगकर उसकी प्रशंसा की, मगर जब वररुचिने उस कमलको सूँगा तो उपकोशाके घर पर रातका पीया हुआ चन्द्रहास नामका मदिरा उसी वक्त वमन होकर निकल गया और

सारी सभामें उसकी गन्ध फैल गई, यह देख कर राजा आदि सब ही सभासदोंने वररुचिको धिक्कार दी और कदर्थना याने तिरस्कार पूर्वक 'वररुचि' को शीघ्रही राजसभासे बाहर निकाला गया । वररुचिने नगरके वृद्ध ब्राह्मणोंसे उस पापका प्रायश्चित माँगा, वृद्ध ब्राह्मण बोले–दारु पीनेवाले ब्राह्मणको यही प्रायश्चित है कि जिस तरह उसने दारु पीया है उसी तरह 'पारा' गरम करके पी लेवे तो उस पापसे छूट सकता है अन्यथा नहीं । वररुचिने वृद्ध ब्राह्मणोंका दिया हुआ प्रायश्चित स्वीकार कर गरम पारा पी लिया और पीते ही उसके प्राणोंने भी वररुचिको शीघ्रही त्याग दिया ।

इधर महात्मा श्री 'स्थूलभद्र' श्री संभूतिविजय आचार्य महाराजके पास निरतिचार चारित्र पालते हुए अनेक प्रकारके अभिग्रहोंको धारण करते हुए और श्रुतज्ञानामृतका आस्वाद करते हुए विचरते हैं । एक दिन आचार्य महाराजसे हाथ जोड़ कर विनयपूर्वक एक साधु बोला–भगवन्! आपकी कृपासे मैं यह अभिगृह धारण करना चाहता हूँ कि चार मास तक आहारका त्याग कर कायोत्सर्ग ध्यानसे सिंहकी गुफाके दरवाजे पर चतुर्मास व्यतीत करूँ । गुरुमहाराजने उस मुनिको योग्य जान कर आज्ञा दे दी, इतनेमें ही दूसरे मुनिने भी गुरुमहाराजके पास आकर वन्दन नमस्कार कर विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर यह आज्ञा माँगी कि भगवन्! मैं आपके पसायसे चार महीनेकी तपस्या करके और कायोत्सर्ग ध्यानसे दृष्टि विष सर्पके बिल पर खड़ा रह कर चतुर्मास करना चाहता हूँ । गुरुमहाराजने उसे भी योग्य समझ कर आज्ञा दे दी, इसी तरहसे तीसरे मुनिने भी पूर्वोक्त प्रकारसे विनयपूर्वक गुरुमहाराजसे विज्ञप्ति की, उसका अभिग्रह यह था कि चार महीनेके उपवास करके और 'मेंडक' के आसनसे कूवेकी मण पर रह कर चतुर्मास पूर्ण करना ।

गुरुमहाराजने उसे भी योग्य समझ कर आज्ञा दे दी। जब उन तीन मुनियोंने पूर्वोक्त प्रकारके घोर अभिग्रह धार लिये और गुरुमहाराजकी आज्ञा लेकर अपने अपने धारण किये स्थान पर जाने लगे तब महा मुनि श्री 'स्थूलभद्र' गुरुमहाराजको विनयपूर्वक बोला—भगवन्! मेरा अभिग्रह तो यह है कि कोशा नामकी वेश्या जो पाटलिपुत्र नगरमें रहती है अनेक प्रकारके चित्रोंसे चित्रित जो उसकी चित्रशाला है वहाँ रह कर षट्रसका आहार करता हुआ चतुर्मास पूर्ण करूँ। गुरुमहाराजने अपने श्रुतज्ञानमें उपयोग दे और स्थूलभद्र महा मुनिको योग्य जान कर वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार घोरातिघोर अभिग्रहोंको धारण कर वे चारों ही महा मुनि गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर अपने अपने इच्छित स्थान पर चले गये। श्री स्थूलभद्रसे पहले जो तीन मुनि सिंहादि गुफाद्वार पर चतुर्मास करनेको गये थे उन महात्माओंके तीव्र तपके प्रभावसे सिंह, सर्पादि सब शान्त होगये। इधर श्री स्थूलभद्र मुनि जब कोशा वेश्याके मकान पर गये तो कोशाने दूरसे श्री स्थूलभद्रको आते देख मनमें विचारा कि स्थूलभद्र प्रकृतिसे बड़ा सुकुमार है अत एव इससे चारित्रका बोझा सहन नहीं हुआ इसीसे पीछे यहाँ आरहा है। यह विचार कर श्री स्थूलभद्रको देख 'कोशा' हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई और स्वागतपूर्वक बोली—स्वामिन्! तन, मन, धन और परिजन यह सब ही आपका है आप कृपा कर मुझे आज्ञा फरमावें मैं क्या करूँ?। श्री 'स्थूलभद्र' बोले—मुझे और कुछ नहीं चाहिये तेरी चित्रशालामें चतुर्मास रहना है अत एव चार महीने रहनेके लिए चित्रशाला मकान चाहिये। कोशा हाथ जोड़ कर बोली—स्वामिन्! यह सब आपका ही तो है आप खुशीसे ग्रहण करें। महात्मा श्री स्थूलभद्र वेश्याकी अनुमतिसे कामदेवके घरके समान कोशाकी चित्रशालामें रहने लगे।

कोशा भी जब श्री 'स्थूलभद्र' षड्रसयुक्त आहार कर चुकते हैं तब उन्हें संयमसे विचलित करनेके लिए सोलह शृङ्गार करके चित्रशालामें आकर अनेक प्रकारके हावभाव करती है। प्रथम तो कोशाका रूप ही देवाङ्गनाके सदृश था, फिर अनेक प्रकारके शृङ्गार कर जब वह उस मनोहर चित्रशालामें आकर श्री स्थूलभद्रके सामने अनुकूल अनेक प्रकारके हावभाव कामचेष्टायें करती थी उस वक्त विना श्री स्थूलभद्रके कौन ऐसा मनुष्य था कि उस अप्सराके समान रूपवाली कोशाकी चेष्टाओंको देख कर चलचित्त न होसके? । कोशाके मकान पर रह कर बारह वर्ष तक उसके साथ श्री स्थूलभद्रने जो पूर्व अवस्थामें विषयसुख भोगा था उन गुप्त बातोंको भी अनेक वार याद करा कर श्री स्थूलभद्रको कोशाने मोहित करना चाहा मगर वह महा धैर्यवान् शकटालनन्दन श्री स्थूलभद्र तो कामदेवसुभटको मरदन करनेके लिये एक मात्र ही दुनियाँमें वीर पैदा हुआ था, जबसे उस अद्वितीय वीर शकटालनन्दनने व्रत ग्रहण किया था तबसे उस महा धैर्यवानको देवाङ्गनायें भी चलायमान करनेको समर्थ न थीं, तो फिर मनुष्य मात्रकी तो ताक़ात ही क्या? । ज्यों ज्यों 'कोशा' श्री स्थूलभद्रको चलानेके लिये हावभाव किया करती त्यों त्यों श्री स्थूलभद्र महा मुनिके हृदयमें ध्यानाग्नि ऐसा देदीप्यमान बढ़ता था जैसे वर्षाकालमें मेघके बरते हुए विजली दीपती है। उस वक्त सब ही संयोग कामदेवको उद्दीपन करनेवाले थे, एक तो वर्षाकाल ही ऐसा था जो विकारको जाग्रित करता है, दूसरे वह चित्रशालाका मकान भी देवविमानके समान था और तीसरे 'कोशा'की कामचेष्टायें तथा उसका रूप 'रति' रम्भाके रूपको भी तिरस्कार करता था। इस प्रकार सब ही विकारके साधन होने पर भी उस महा मुनिके मनका भाव जरा भी विचलित न हुआ। कोशाने जब श्री स्थूलभद्रका मन

हरएक प्रकारसे निश्चल देखा तब वह खुद ब खुद शरमिन्दा होकर उनके चरणोंमें पड़ गयी और बोली—स्वामिन्! आपको धन्य है आप पहले जैसे सुख भोगनेमें समर्थ थे वैसे ही इस वक्त उन सुखोंको त्यागनेमें भी समर्थ हो और धिक्कार हो मुझे जिसने पूर्वसंभोग अवस्थाको याद कर विषयसुख भोगनेकी आशासे आप जैसे महात्माको चलचित्त करनेके लिए अनेक प्रकारकी कामचेष्टायें कीं। कोशाने इस प्रकार अपने आत्माकी निन्दा करके श्री स्थूलभद्र महा मुनिके पास श्रावकव्रत अंगीकार कर यह अभिग्रह धारण कर लिया कि यदि राजा किसीके ऊपर संतुष्ट होकर आज्ञा दे तो उस पुरुषको वर्ज कर अन्य पुरुषका यावज्जीव त्याग, याने जिस पुरुषके लिए राजा आज्ञा दे उस आदमीके सिवाय अन्य पुरुषसे मैथुन सेवन नहीं करना। वर्षाकाल व्यतीत होने पर जब वे पहलके तीनों महात्मा घोर अभिग्रहोंको पूर्ण करके गुरुमहाराजके पास आये तब गुरुमहाराजने भी थोड़ासा अपने आसनसे उठ कर उन तीनोंका क्रमसे स्वागत किया और उन्हें दुष्करकारक कहा। उनके पीछे जब श्री स्थूलभद्र महा मुनि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर गुरुमहाराजके पास आये तब गुरुमहाराज अपने आसनसे उठ कर बोले—दुष्कर दुष्कर कारिन् महात्मन्! स्वागतं तव। यह सुन कर वे पहले तीनों साधु ईर्षामें आकर विचारने लगे कि गुरुमहाराजने जो स्थूलभद्रको अधिक मान दिया है उसका कारण यही है कि वह मंत्रीपुत्र है, वरन इसने क्या दुष्कर कार्य किया है? षट्रस संबन्धि आहार करता हुआ कोशा वेश्याकी चित्रशालामें चतुर्मास कर आया, यदि हमारे समान अभिग्रह धारण करता तो मालूम होजाता, हाँ यदि वेश्याके मकान पर चतुर्मास करनेसे ही गुरुमहाराजने स्थूलभद्रको दो दफा दुष्कर २ कारक कहा है तो आगामी चतुर्मास हम भी वहाँ ही करेंगे। अपने मनमें यह धारणा करके उन साधु-

ओंने शेषाकालके आठ महीने व्यतीत किये, जब वर्षाकाल निकट आया तब वह सिंह गुफावासी साधु, गुरुमहाराजके सामने आकर सहर्ष विनयपूर्वक बोला—भगवन्! षट्रसके भोजन करके यह चतुर्मास मैं कोशा वेश्याकी चित्रशालामें रहना चाहता हूँ। गुरुमहाराज जान गये कि यह साधु स्थूलभद्रकी ईर्षासे ही ऐसा करना चाहता है अत एव गुरुमहाराज श्रुतज्ञानमें उपयोग देकर बोले—वत्स! इस प्रकारके दुष्कर २ अभिग्रहको मत धारण कर इस कामको करनेके लिये तो मेरु पर्वतके समान धैर्यवान स्थूलभद्र ही समर्थ था। शिष्य बोला—महाराज मेरे सामने तो यह दुष्कर भी नहीं आप इसे दुष्कर दुष्कर कहते हैं मैं अवश्य इस कार्यको करूँगा। गुरुमहाराज बोले—इस अभिग्रह याने इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करते हुए तू अपना पहला किया हुआ तप भी खो बैठेगा, जैसे कोई अपनी शक्तिसे अधिक भार उठा लेता है और पीछे उसके साँधे टूट जाते हैं। गुरुमहाराजके निषेध करने पर भी वह वीरंमन्य मुनि न रुका और चतुर्मास बैठनेके समय कोशाके मकान पर जाकर चित्रशालाकी याचना की, कोशा बड़ी चतुरा थी अत एव उसने उस मुनिको देख कर अनुमानसे जान लिया कि यह मुनि स्थूलभद्रकी स्पर्धासे ही यहाँ आया है, तथापि कोशाने उस मुनिका श्री स्थूलभद्रके समान ही विनय किया और चतुर्मास रहनेके लिये उस मुनिको अपनी चित्रशाला खोल दी। अब वह मुनि षट्रसयुक्त आहार करता हुआ देवविमानके समान कोशाकी चित्रशालामें रहने लगा। एक दिन अच्छे २ वस्त्राभरण धारण कर 'कोशा' मध्यानके समय उस मुनिकी परीक्षा करनेके लिये उसके पास आई, कोशाका रूप देख कर वह सिंह गुफावासी मुनि एकदम क्षोभको प्राप्त होगया और कामातुर होकर कोशाके सामने मीठे २ वचनोंद्वारा अपने मनोगत भावको

प्रगट करने लगा। आहार भी कामकी वृद्धि करनेवाला ही किया जाता था, मकान भी एकान्तका था और कोशाका रूप भी वैसा ही, फिर ऐसे संयोगीको क्यों न विकार पैदा हो?। उस मुनिने अपने मुनिपनेको भुला कर जब कोशाके साथ संभोगकी प्रार्थना की तब कोशाने विचार किया कि यह बिचारा मुनि भावसे तो पतित हो ही चुका मगर किसी तरहसे अपने संयममें स्थिर होवे ऐसा कोई उपाय करूँ। यह विचार कर 'कोशा' बोली–भगवन्! हम तो वेश्यायें हैं आप जानते हो कि वेश्यायें तो धनके अधीन होती हैं, मुनि बोला–मृगलोचने! जैसे वालुका (रेत) में तेल नहीं होता वैसे ही साधुओंके पास धन भी नहीं होता, यदि मेरे पास धन होता तो मैं अवश्य तुझे देता, कोशा बोली–नेपाल देशका राजा नवीन साधुको याने जो पहल पहल ही जाय उसे रत्न कम्बल देता है, जाओ आप भी वहाँ जाकर ले आओ। उस मुनिको उस वक्त अपने साधुपनेका बिलकुल भान न रहा और विषयसुखकी आशारूप रस्सीसे जकड़ा हुआ वर्षाकालमें ही नेपाल देशको चल पड़ा। नेपालमें जाकर नेपाल महीपालसे रत्न कम्बल लेकर एक पोले बाँसमें डाल कर पीछे चल पड़ा, जिस रास्तेसे बाँसके अन्दर रत्नकम्बल डाल कर वह मुनि आ रहा था उस रास्तेमें चोर रहते थे, उन चोरोंके पास एक शकुनि पक्षी था और रास्तेके पास ही एक वृक्षके ऊपर उन चोरोंने आदमीको बैठा रक्खा था। जब वह मुनि चोरोंकी पल्लीके समीप आया तब वह शकुनि पक्षी बोला–लक्ष मायाति २ शकुनिका यह शब्द सुन कर चोरोंका मालिक उस वृक्ष पर चढ़े हुए मनुष्यसे बोला–रास्तेमें कौन आता है? वृक्षवाला आदमी बोला–ऐसा कोई मालदार आदमी तो नहीं आता, सामने यह एक भिक्षुक तो आ रहा है। चोरोंने उस साधुको पकड़ लिया तलास करने पर जब उसके पास

कुछ न मिला तब चोरोंने उसे छोड़ दिया। जब वह साधु वहाँसे जाने लगा तब फिर वह 'शकुनि पक्षी' वैसे ही बोला—लक्षं प्रयाति २, इस प्रकार जब फिरसे शकुनिका वाक्य सुना तो पल्लीपति चोरने दौड़ कर उस मुनिको फिर पकड़ लिया और कहा कि तेरे पास अवश्य कुछ न कुछ है इस लिए तू सत्य बता दे तेरे पास क्या है और कहाँ छिपा रक्खा है? मुनि बोला—वेश्याके लिये नेपाल भूपालके वहाँसे रत्नकम्बल लाया हूँ और इस बाँसके अन्दर डाला हुआ है। पल्लीपति चोरको उस मुनिके ऊपर कुछ तरस आगया अत एव उसने उस मुनिको कुछ भी न कह कर छोड़ दिया। पाटलिपुत्र नगरमें आकर उस मुनिने खुशी होकर जब वह रत्नकम्बल कोशा वेश्याको दिया तब उसने अपने पाँव पूँछ कर निःशंक तया उसके टुकड़े कर कीचड़से भरी हुई घरकी मोरीमें डाल दिया। जब कोशाने उस रत्नकम्बलको अपने पाँव पूँछ कर कीचड़की मोरीमें डाल दिया तब वह मुनि बोला—भद्रे! लाख रुपयेकी किम्मतका और मुस्किलसे प्राप्त हुआ जो यह रत्नकम्बल था उसे फाड़ कर अशुचि स्थानमें क्यों डाल दिया?। 'कोशा' हितगर्भित वचनोंसे बोली—अरे मूढ! कीचड़में पड़ते हुए इस रत्नकम्बलको देख कर सोच करता है और गुणरत्नमय अपने आत्माको नरकमें पड़ते हुए देख कर भी सोच नहीं करता, विचार कर यह रत्नकम्बल अधिक मोलवाला है या चिरकाल तक पाला हुआ तेरा संयम रत्न अधिक मोलवाला है?। जब तू अमूल्य रत्नको विषयरूप कीचड़में डालनेको तैयार हुआ है तो फिर इस अल्प मूल्य रत्नकम्बलका विचार क्या करता है?। इस प्रकार हितगर्भित कोशाके वचन सुन कर वह मुनि कुछ अपने साधुपनेमें आया और वैराग्यको प्राप्त होकर बोला—भद्रे! तूने मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकार किया जो इस प्रकार बोध करके मुझे संसारसागरमें पड़ते

हुएको बचा लिया, आर्ये! अब तेरे प्रति धर्मलाभ हो अब मैं गुरुमहाराजके पास जाता हूँ और उनके चरणोंमें अतिचार जन्य पापोंकी आलोचना करके निरतिचार चारित्र पालूँगा । जब यों कह कर मुनिराज वहाँसे चलनेको तैयार हुआ तब मुनिको ठिकाने आया देख कोशा भी हाथ जोड़ कर बोली–महाराज क्षमा करना मैंने बड़ा अपराध किया है जो चतुर्थ व्रतका नियम होने पर भी आपको इस तरह तकलीफ दी । परन्तु यह सब आशातना आपको बोध करनेके लिये ही की गई है, तथापि मुझसे जो आपका अविनय हुआ है उसका मैं मिथ्या दुष्कृत देती हूँ और फिर भी आपको इतना कहती हूँ कि आप गुरुमहाराजके पास जाकर इन अतिचारोंकी आलोचना करो । गुरुमहाराजके पास जाकर अपने अतिचारोंकी आलोचना करके वह मुनि फिर निरतिचार चारित्र और दुस्तप तपस्या करने लगा । एक दिन श्री संभूतिविजयसूरि अपना आयु पूर्ण हुआ समझ कर समाधिपूर्वक पण्डित मृत्युसे काल कर देवलोकमें जा पैदा हुए ।

राजा 'नन्द' एक दिन एक रथवानके प्रति प्रसन्न हुआ, रथवानने राजासे यही माँगा कि हुजूर मैं कोशा वेश्याके साथ मुलाकात करनी चाहता हूँ, राजाने कोशाको आज्ञा दे भेजी कि हमारा आदमी तुम्हारे पास आता है तुमने इस आदमीको खूब प्रसन्न करना, कोशाकी इच्छा नहीं थी तो भी उसने राजाकी आज्ञासे उस रथवानका आदर सत्कार किया और उसके सामने महा मुनि श्री स्थूलभद्रके गुणानुवाद करने लगी । कोशाके मकानमें एक बगीचा भी था, उस बगीचेमें आँब, अमरुद, अनार, नीबु आदि बहुतसे वृक्ष थे अत एव वह बगीचा बड़ा ही रमणीय और मनोहर था, कोशाके साथ 'रथवान' उस बगीचेमें एक रमणीग पलङ्ग पर बैठा हुआ कोशाका मनोरंजन करनेके लिए अपनी कलाकौशलता दिखाने लगा ।

रथवानने आँबके गुच्छे पर एक बाण तान कर मारा और उस बाणको दूसरे बाणसे बींध दिया, दूसरेको तीसरेसे तीसरेको चौथेसे और चौथेको पाँचवेंसे, इस तरह अपने हाथ तक उसने बाणोंकी श्रेणी लगा दी और पीछे अपने हाथसे उस आँबके गुच्छेको झटकेद्वारा तोड़ कर कोशाके हाथमें दे दिया। रथवानसे कोशा बोली—अच्छा अब आप मेरी भी कलाकुशलता देखिये, यों कह कर कोशाने सरसोंके दानोंकी राशि बिछा कर उसके ऊपर सूई बिछाई और उन सूइयोंके ऊपर पुष्प—पत्रादि डाल कर उस पर बड़ी खूबीसे अच्छी तरह नृत्य किया। कोशाने उस सरसोंकी राशि पर ऐसा नाच किया कि जिससे सरसोंकी राशि भी क्षत न हुई और सूँइयोंसे कोशाके पाँवको भी इजा न आई। कोशाकी यह कला देख कर रथवान चकित होगया और बड़ा प्रसन्न होकर बोला—आर्ये! इस तेरे दुस्कर कार्यसे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ अतएव जो तेरी इच्छा हो और मैं दे सकूँ बेशक माँग ले मैं तुझे अवश्य दूँगा।

कोशा बोली—मैंने क्या ऐसा दुष्कर कार्य किया है जिससे तुम खुश हुवे हो? इसमें कुछ बड़ी बात नहीं है यह तो अभ्यासकी बात है। अभ्याससे आदमी क्या काम नहीं कर सकता? अर्थात् अभ्यासी आदमीके सामने ऐसा कोई कार्य नहीं जो दुष्कर हो। यहाँ बैठ कर बाणोंद्वारा आँबका गुच्छा तोड़ लेना और इस प्रकारसे सरसोंकी राशि पर नृत्य करना यह सब अभ्याससे हो सकता है, परन्तु बिना अभ्यासके जो कार्य 'स्थूलभद्र' कर गया है वह दुष्कर है। जिस मकानके अन्दर रह कर स्थूलभद्रने बारह वर्ष तक मेरे साथ विषयसुखका अनुभव किया था उसी चित्रशालामें वह महात्मा अखण्डित व्रतसे चतुर्मास रह गया। दूधको देख कर जैसे न्यौल

और बिल्लीका मन चल जाता है वैसे ही स्त्रीको एकान्तमें देख कर स्थूलभद्रके बिना बड़े बड़े महर्षियोंका मन भी डिग जाता है, भला जिस तरहसे महा मुनि 'स्थूलभद्र' चित्रशालामें चतुर्मास रह गया है उस तरह एक दिन भी स्त्रीके पास निश्चल मनसे कौन मनुष्य रह सकता है ? । जिस प्रकार अग्निके संसर्गसे सर्व प्रकारके धातु पिगल जाते हैं वैसे ही रूपवाली वनिताओंके संसर्गसे बड़े बड़े योगियोंके मन भी पिगल जाते हैं । परन्तु स्थूलभद्रका वज्रमय मन तो ऐसे संयोग होने पर भी न पिगला । बस दुनियाँमें दुष्कर दुष्कर कार्य करनेवालेको जन्म दिया है तो उसकी माताने स्थूलभद्रको ही दिया है । जब इस प्रकार कोशा स्थूलभद्रकी प्रशंसा करने लगी तो वह रथवान विस्मित होकर बोला–जिसकी तू इतनी प्रशंसा कर रही है वह स्थूलभद्र महात्मा कौन है ?

कोशा बोली–राजा नन्दके प्रधान मंत्री शकटालका बड़ा पुत्र स्थूलभद्र है, संसारकी विडम्बनाको घृणाकी दृष्टिसे देखता हुआ वह रथवान बोला–अहो !! धन्य है ऐसे महात्माको जो स्याहीकी कोठड़ीमें रह कर भी निर्दाग निकल गया । बस ऐसे महात्माका सेवक बनना भी श्रेष्ठ है, रथवानको संसारसे कुछ वैराग्यवान् देख कर कोशाने उसे कुछ और भी संसारकी असारता दिखलाई, 'रथवान' जब श्री स्थूलभद्रका चरित्र सुन कर और कोशाकी दिखाई हुई संसारकी असारतासे वैराग्यको प्राप्त होगया तब कोशाने अपना अभिग्रह भी रथवानको कह सुनाया । 'रथवान' कोशाकी प्रशंसा करता हुआ बोला–भद्रे ! तूने मुझे महात्मा स्थूलभद्रकी गुणोक्तियोंसे भली प्रकार बोध किया है । बस अब मैं भी उस महात्माके ही रास्ते जाऊँगा जो तूने बतलाया है, बस तेरा कल्याण हो और अखण्डित अपने अभिग्रहको पाल, यों कह कर 'रथवान' कोशाके मकानसे चला गया

और गुरुमहाराजके पास जाकर संसार समुद्रको तारनेके लिये जहाजके समान दीक्षा ग्रहण कर ली।

भगवान् श्री स्थूलभद्र भी तीव्र तपस्यायें करते हुए और अनेक प्रकारके अभिग्रहोंको धारण करते हुए पृथ्वी तल पर विचरते हैं। उस वक्त उस देशमें बारह वर्षका विकराल दुष्काल पड़ना शुरू होगया था।

॥ बीसवाँ परिच्छेद ॥

चंद्रगुप्त और चाणक्य ।

इधर 'गोल्ल देश' में एक 'चणक' नामका गाँव था उस गाँवमें चणी नामका एक ब्राह्मण रहता था और चणेश्वरी नामकी उसकी पत्नी थी, 'चणी' जन्मसे लेकर परम श्रावक था अत एव एक दिन अतिशय ज्ञानवान जैन मुनि उसके मकान पर आकर ठहरे, उस समय जन्मसे ही दाँत जमे हुए हैं जिसके और कान्तिसे सूर्यके समान तेजस्वी चणीकी भार्या 'चणेश्वरी' ने एक पुत्ररत्नको जन्म दिया था, उस बालकको लेकर चणी साधुओंके पास आया और उस बालकसे साधुओंको नमस्कार करा कर जन्मसे ही जमे हुए उसके दाँतोंका हाल कह सुनाया । अतिशय ज्ञानको धारण करनेवाले वे महात्मा ज्ञानसे जान कर बोले—भावी कालमें यह लड़का राज्यभोगी होगा । यह हम पहले ही लिख आये हैं कि चणीको जैन दर्शन पर पूर्ण श्रद्धा थी, वह परम श्रावक और परम संतोषी था अत एव मेरा पुत्र राज्यारंभसे नरकका अतिथि न बने, यह विचार कर उसने उस लड़केके दाँतोंको रगड़ दिया, यह समाचार भी साधुओंको मालूम होगया इस लिए वे बोले—खैर तुमने इस बालकके दाँत रगड़ दिये हैं तो भी यह बिम्बान्तरित याने दूसरेको राजगद्दी पर बैठा कर राज्यऋद्धि भोगेगा । चणीने उस बालकका नाम 'चाणक्य' रक्खा, 'चाणक्य' भी बचपनसे ही बड़ा संतोषी और धर्मरागी था,

चाणक्य जब योवनावस्थाके सन्मुख हुआ तब उसके पिताने एक कुलीन ब्राह्मणकी सुशीला कन्याके साथ उसका पाणीग्रहण करा दिया। 'चाणक्य' बड़ा विद्वान् और नीतिज्ञ था इसीसे गाँवमें उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी। एक दिन 'चाणक्य' की सुसरालमें उसके सालेका विवाह था अत एव उसकी पत्नी अपने भाईके व्याहमें अपने पतिकी आज्ञा ले अपने पिताके घर गई। उस विवाहोत्सवमें चाणक्यकी दूसरी सालियाँ भी आई हुई थीं, वे सब अच्छे धनाढ्य ब्राह्मणोंके साथ व्याही गई थीं अत एव उनके वस्त्राभरण भी अपनी अपनी ऐश्वर्यतानुसार थे। सबके साथ एक एक दो दो दासियें भी थीं, मुखमें पानके बीड़े भी पड़े हुए थे और उन सबके सिरमें वेणी (चोटी) में लिपटी हुई पुष्पोंकी मालायें मकानको सुरभित करती थीं। चाणक्यकी स्त्रीके वैसे वस्त्राभरण न थे, उसके शरीर पर साधारण ही वस्त्र और साधारण ही आभूषण थे, तो फिर पानबीड़ेकी तो बात ही क्या? इसी लिए वे धनाढ्य पतिवाली स्त्रियां उस साधारण स्थितिवाली अपनी बहनकी मस्करी करने लगीं, बल्कि उसके बहनोयियोंने भी चाणक्यपत्नीकी मस्करी की, वह बिचारी मारे लज्जाके मकानसे बाहर भी न निकली, शरमा कर मकानके अन्दर ही बैठ रही और लज्जातुर होकर उसने विवाहमहोत्सवको भी न देखा। विवाहमहोत्सव व्यतीत होने पर चाणक्यकी स्त्री अपने पतिके मकान पर आ गई, 'चाणक्य' एक दिन अपनी पत्नीको उदास देख कर बोला—आज तू उदास क्यों है क्या मैंने कभी तेरा तिरस्कार किया है या किसी पड़ौसीने कुछ कहा है? अथवा तेरे पिहरमें किसीने तेरा अपमान किया है? जो तू इस तरह उदासीनताको धारण करती है। वह बिचारी शरमकी मारी पतिके सामने कुछ बोलना नहीं चाहती तथापि जब चाणक्यने बहुत आग्रहपूर्वक पूछा तो पिहरमें जिस का-

रणसे उसका अपमान हुआ था वह सब कह सुनाया। चाणक्य अब अपनी गृहिणीके दुःखका कारण जान कर द्रव्योपार्जनका निरपाय उपाय सोचने लगा। सोचते सोचते चाणक्यने यह उपाय निकाला कि पाटलिपुत्र नगरमें राजा नन्द नवीन ब्राह्मणको दक्षिणा देता है अत एव वहाँ जाऊँ और वहाँसे दक्षिणा लेकर आऊँ। यह विचार कर 'चाणक्य' पाटलिपुत्र नगरमें गया और राजसभामें जा पहुँचा, राजा उस वक्त राजसभामें नहीं था अत एव 'चाणक्य' राजाके सिंहासन पर बैठ गया, उस आसन पर सिवाय राजा नन्दके और कोई न बैठता था। राजाके भद्रासन पर 'चाणक्य' को बैठा देख राजाकी दासीने 'चाणक्य' के लिए जुदा आसन बिछा दिया और विनयपूर्वक बोली—महाराज! आप इस आसनसे उठ कर इस पर बैठ जाओ। 'चाणक्य' बोला—इस पर मेरा कमण्डलू रहेगा यों कह कर चाणक्यने उस दासीके बिछाये हुए आसन पर अपना कमण्डलू रख दिया और वह प्रथमका आसन न छोड़ा। दासीने तीसरा आसन बिछा दिया, चाणक्यने उसके ऊपर अपना दण्डा रख दिया। दासीने फिर चौथा आसन बिछाया, उसे भी चाणक्यने रुद्राक्षकी मालासे रोक दिया यानें उस पर भी माला रख दी। इसी तरहसे पाँचवें आसनको भी यज्ञोपवीतद्वारा घेर लिया परन्तु उस पहले मूल भद्रासनको न छोड़ा। जब दासीके दिये हुए पाँचों ही आसनोंको अपनी वस्तुओंसे चाणक्यने घेर लिया और मूल भद्रासनको न छोड़ा तब दासीको चाणक्यके ऊपर क्रोध आ गया और बोली—ओहो! कैसा धृष्ट है यह ब्राह्मण जो भद्रासनको नहीं छोड़ता और दूसरे आसनोंको भी रोकता जाता है। यह कैसा पागल और ढीढ ब्राह्मण है? यों कह कर दासीने मारे क्रोधके उस चाणक्य ब्राह्मणको लात मार कर आसनसे नीचे उतार दिया। चाणक्यकी आँखें क्रोधसे ऐसी लाल

सूर्क हो गई जैसे सताये हुए सर्पकी होजाती हैं, चाणक्यने उस वक्त क्रोधमें आकर सभा समक्ष यह प्रतिज्ञा कर ली कि सपरिवार और ससैन्य नन्दको राजगद्दीसे ऐसा उन्मूलित करूँगा जैसे महा वायु वृक्षको उन्मूलित करता है ।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके और मारे क्रोधके जलता हुआ शीघ्र ही पाटलिपुत्र नगरसे बाहर निकल गया । 'चाणक्य' को यह बात मालूम थी कि जैनमुनियोंने यह कहा हुआ है कि 'चाणक्य बिम्बान्तरित राजा होगा याने दूसरेको राजगद्दी पर बैठा कर आप हुक्म करेगा, अत एव अब 'चाणक्य' राजगद्दीके योग्य मनुष्यकी खोजमें फिरने लगा । जिस गाँवमें राजा नन्दके मयूर पोषक लोग रहते थे एक दिन चाणक्य परिव्राजक वेषको धारण कर भिक्षाके लिए उसी गाँवमें चला गया । मयूर पोषकोंका जो सरदार था उसकी एक लड़की गर्भवती थी अत एव उसे यह 'दोहदा' (दोहला) उत्पन्न हुआ कि मैं चन्द्रमाको पी जाऊँ, परन्तु इस दोहलेको पूर्ण करनेके लिए कोई समर्थ न हुआ, इसी समय परिव्राजक वेषमें वहाँ पर चाणक्य आ पहुँचा, मयूर पोषकोंने याने उस गर्भवती लड़कीके कुटुम्बियोंने चाणक्यसे यह सब हाल कह सुनाया, चाणक्य बोला— भाई! यह दोहला तो पूर्ण करना बड़ा दुष्कर है तथापि तुम लोग मेरा कहना मंजूर करो तो मैं इस दुष्कर दोहलेको पूर्ण कर सकता हूँ, मयूर पोषकोंने चाणक्यसे कहा—महाराज! जो आप फरमावें हम सब कुछ करनेको तैयार हैं, मगर किसी प्रकारसे यह दोहला पूर्ण करके आप हमारी लड़कीके प्राण बचाओ । चाणक्य बोला—इस बाईका जो गर्भ है उसे पैदा होतेको ही तुम मुझे दे दो तो मैं इसकी इच्छा अभी पूर्ण कर दूँ अन्यथा दोहला पूर्ण न होनेसे इसके गर्भका भी विनाश हो जायगा और इस बाईकी भी खैर नहीं । उस बाईके कु-

टुम्बियोंने उसकी जान बचानेके लिए चाणक्यकी बात स्वीकार कर ली। चाणक्यने वहाँ पर सूके घासका एक मंडप बनवाया और उस मंडपके बीचमें एक छिद्र रख दिया । पूर्णिमाकी मध्यरात्रिके समय जब चन्द्रमा उस मंडपके ऊपर चढ़ आया और मंडपके बीचमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ने लगा तब चाणक्यने एक आदमीको सिखा कर उस मंडपके ऊपर चढ़ा दिया। चाणक्यने मंडपके अन्दर जहाँ पर चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़ता था वहाँ पर दूधसे भर कर एक थाली रख दी, जब बराबर पूर्ण तया चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब उस दूधकी थालीमें पड़ने लगा तब चाणक्यने उस गर्भवती बाईको बुलवा कर उसे चन्द्रमासे प्रतिबिम्बित उस दूधकी थालीको दिखाया। उस वक्त उस दूधकी थालीमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब साक्षात् चन्द्रमाके समान ही मालूम होता था। चाणक्यने बाईको पीनेकी आज्ञा दे दी, अब वह बाई खुशीके साथ उस थालीसे मुँह लगा कर पीने लगी, ज्यों ज्यों वह बाई उस दूध भरी थालीको पीती है त्यों त्यों चाणक्यका सिखाया हुआ जो आदमी उस मंडपके ऊपर चढ़ा हुआ था वह मंडपके छिद्रको ऐसी खूबीसे आच्छादित करता जाता है कि जिससे दूधकी थालीमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब कुछ कम होजाता है अत एव वह बाई विचारती है कि मैं साक्षात् चन्द्रमाको पी रही हूँ । इस प्रकार 'चाणक्य' उस बाईका दोहला पूर्ण करके सुवर्णोपार्जन करनेके लिए रसायनसिद्धि जाननेवाले पुरुषोंकी खोजमें फिरने लगा । इधर दोहला पूर्ण होने पर नव महीने बाद उस बाईने चन्द्रमाके समान सौम्यताको धारण करनेवाले और सूर्यके समान तेजस्वी पुत्ररत्नको जन्म दिया । उसकी माताको चन्द्रमाका पान करनेका दोहला उत्पन्न होनेसे मातापिताने उस बालकका 'चन्द्रगुप्त' नाम रक्खा । 'चन्द्रगुप्त' अब द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त होने लगा । 'चन्द्र-

गुप्त' अब होसले लायक हुआ है अत एव अब वह पड़ौसके लड़कोंके साथ गाँवसे बाहर जाकर क्रीड़ा करता है, किसी लड़केको हाथी बनाता है किसीको घोड़ा बनाता है और उनके ऊपर चढ़ कर राजा बन कर लड़कोंको शिक्षा देता है, तथा राजाके समान प्रसन्न होकर किसीको गाँव आदि इनाममें देता है। एक दिन उन बालकोंके क्रीड़ा करते समय कहींसे फिरता २ 'चाणक्य' वहाँ पर आ निकला। चन्द्रगुप्तकी वैसी चेष्टायें देख कर चाणक्य बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुआ और उस बालक राजाकी परीक्षा करनेके लिए बोला-हे राजन्! कुछ मुझ गरीब ब्राह्मणको भी देना चाहिये। चन्द्रगुप्त बोला-ब्रह्मन्! ये जो गाँवकी गायें चर रही हैं इनमेंसे तेरी मरजी हो उतनी मेरी दई हुई ले जा, यह सुन कर 'चाणक्य' मुस्करा कर बोला-गायें कैसे ले जाऊँ गायोंवाले लोगोंसे डर लगता है जो वे मुझे मारें तो? 'चन्द्रगुप्त' बोला-बस मैं तुझे देता हूँ तू खुशीसे ग्रहण कर ले मेरे बैठे हुए तुझे मारनेवाला कौन है? क्या तुझे यह वाक्य याद नहीं है? कि-वीरभोज्या वसुन्धरा। इस प्रकार उस बालकका धैर्य देख कर 'चाणक्य' विस्मित होकर दूसरे बालकोंसे पूछने लगा कि यह किसका लड़का है?। लड़के बोले-यह तो एक परिव्राजकका पुत्र है क्योंकि इसके मातापिता और इसके नानाने जब यह गर्भमें ही था तबसे ही इसे एक परिव्राजकको दे दिया है। 'चाणक्य' यह बात सुन कर समझ गया कि यह तो वही बालक है जिसके गर्भका मैंने दोहला पूर्ण किया था, 'चाणक्य' बोला-अरे भाई! जिस परिव्राजकको तेरे मातापिताने तुझे समर्पण कर दिया है वह परिव्राजक मैं ही हूँ और राजाओंकी तू यह नकल क्या करता है चल मेरे साथ मैं तुझे असली राज्य देकर राजा बनाऊँ। राज्य लेनेकी इच्छासे चन्द्रगुप्त भी चाणक्यकी अंगुली पकड़ कर उसके साथ चल पड़ा। चन्द्रगुप्तको ले कर 'चाणक्य' वहाँसे

ऐसे भाग गया जैसे कोई चोर किसीका धन चुरा कर भाग जाता है। चाणक्यने जो रसायन सिद्धिसे द्रव्य प्राप्त किया था उस धनसे उसने कुछ सैन्य इकट्ठा करके नन्दका राज्य लेनेके लिए पाटलिपुत्र नगरको जा घेरा। मगर कहाँ राजा नन्दका सैन्य और कहाँ चाणक्य-की अशिक्षित थोड़ीसी सेना? । राजा नन्दकी सेनाने चाणक्यकी सेनाको मार भगाया और कितने एक फौजियोंको पकड़ कर गिरफ़-दार कर लिया । 'चाणक्य' बड़ा अवसरका जानकार था अत एव अपनी हार देख चन्द्रगुप्तको लेकर वहाँसे भाग निकला। राजा नन्दको यह मालूम होनेसे कि मेरे राज्यका मालिक चन्द्रगुप्त बनना चाहता है उसने चन्द्रगुप्तको पकड़नेके लिए अपने घोड़सवार छोड़ दिये क्योंकि राजा लोग अपने राज्यकी आकांक्षा करनेवाले पुरुषको नहीं सहन कर सकते।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त जब एक रास्ते तालावके पाससे जारहे थे तब उनके पीछे उसी रास्तेसे चन्द्रगुप्तकी खोजमें एक घोड़ेसवार घोड़ा दबाये आरहा था, चाणक्यने उसे दूरसे ही आते देख चन्द्रगुप्तको कह दिया कि बेटा तू मेरी आज्ञासे कमलोंसे भरे हुए इस तालावके अ-न्दर घुस जा । 'चन्द्रगुप्त' चाणक्यकी आज्ञा पाते ही उस अगाध पानीवाले सरोवरमें घुस गया । 'चाणक्य' खुद सरोवरके किनारे आसन लगा कर समाधिमुद्रासे बैठ गया । थोड़ी ही देरमें बड़े वे-गसे राजा नन्दका सवार वहाँ पर आ गया और उसने उस कृत्रिम योगी चाणक्यसे पूछा कि बाबा! यहाँसे कोई नव जवान पुरुष जाता देखा है? । समाधि भंग होनेके भयसे 'चाणक्य' ने उस घोड़ेसवारको जबानसे कुछ भी उत्तर न देकर हुंकारपूर्वक अंगुलीसंज्ञासे सरोवरमें घुसे हुए चन्द्रगुप्तको बता दिया । चन्द्रगुप्तको पकड़नेके लिए वह घोड़ेसवार घोड़ेसे नीचे उतर कर और शरीरसे वस्त्र–शस्त्रादि उतार

कर उस सरोवरमें घुस गया । यह अवसर पाकर चाणक्यने उस घोड़ेसवारकी ही तलवारसे उसका सिर उड़ा दिया और चन्द्रगुप्तको सरोवरमेंसे निकाल उसी घोड़े पर बैठा कर 'चाणक्य' आगे चल दिया । रास्तेमें जाते हुए चाणक्यने चन्द्रगुप्तसे पूछा कि जब मैंने उस घोड़ेसवारको तुझे सरोवरमें बतलाया था तब तेरे मनमें क्या आया था? 'चन्द्रगुप्त' बोला—मेरे मनमें उस वक्त यही आया था कि जो कुछ महाराज कर रहे हैं सो मेरे कल्याणके लिए ही कर रहे हैं, इस वक्त मेरे बता देनेमें ही कल्याण समझा होगा । यह सुन कर चाणक्यने अपने मनमें विचार किया कि अवश्यमेव यह सरल स्वभावी सदाकाल मेरे वशवर्ती रहेगा, याने मुझसे विपरीत भाव न धारण करेगा । जब चाणक्य और 'चन्द्रगुप्त' चले जा रहे थे तब फिर एक यमदूतके समान नन्दका घोड़ेसवार पीछे आरहा था, होन-हार वहाँ पर भी एक तालाव था और उस तालाव पर एक धोबी कपड़े धो रहा था । चाणक्यने वहाँ भी चन्द्रगुप्तको तालावमें बाड़ दिया और उस तालावके किनारे पर जो धोबी कपड़े धो रहा था उससे 'चाणक्य' बोला—अरे मूढ! तुझे मालूम नहीं? राजा नन्द धोबी लोगों पर रुष्टमान होगया है और देख यह तेरे मारनेके लिए ही राजाका घोड़ेसवार आरहा है, यदि तुझे अपने प्राण बचाने हों तो यहाँसे जलदी भाग जा वरन मारा जायगा । योगीराजके मुखसे यह बात सुनते ही 'धोबी' कपड़े वहाँ ही छोड़ अपने प्राणोंको ब-चानेके लिए शीघ्र ही वहाँसे भाग गया । धोबीके भाग जाने पर 'चाणक्य' स्वयं धोबीका वेष बना कर उसी ठिकाने कपड़े धोने लगा, जब चाणक्यके पास वह घोड़ेसवार आया और उसने चाण-क्यसे चन्द्रगुप्तको पूछा तो चाणक्यने पूर्वके समान ही चन्द्रगुप्तको बता दिया और जब वह घोड़ेसवार उसको पकड़नेको तालावमें घुसा

तब चाणक्यने पहलेकी तरह ही उसीके हतियारसे उसे भी ठिकाने पहुँचा दिया। अब चाणक्य और चन्द्रगुप्त वहाँसे आगे चले। रास्तेमें जाते हुए भूखके मारे चन्द्रगुप्तकी आँखोंके सामने अँधेरी आने लगी अत एव चन्द्रगुप्तको एक गाँवके बाहर छोड़ कर चाणक्य आप उसके लिए गाँवमेंसे भोजन लेनेको गया क्योंकि गाँवके विना जंगलमें भोजन मिलना दुर्लभ था। दैवयोग उस गाँवमेंसे खीर खा कर तत्काल ही एक ब्राह्मण आरहा था, वह चाणक्यको रास्तेमें ही मिल गया, चाणक्यने उस ब्राह्मणसे पूछा कि यहाँ पर भोजन मिलता है या नहीं? ब्राह्मण बोला–मिलता है मैं अभी जीम कर आ रहा हूँ। चाणक्यने पूछा क्या जीम कर आया है? 'ब्राह्मण' बोला–मैं खीर खाकर आया हूँ। चाणक्यने विचारा कि यदि मुझे गाँवमें फिरते हुवे देर होगई तो पीछे नन्दके सवार बिचारे एकले चन्द्रगुप्तको न पकड़ जायें और यदि मेरे पीछे ऐसा होगया तो मेरे मनोरथ स्वप्नके समान निष्फल होजायेंगे अत एव चन्द्रगुप्तको एकला छोड़ना उचित नहीं। यह विचार कर चाणक्यने उस ब्राह्मणका पेट कटारसे चीर डाला और जैसे तपेलीमेंसे खीर निकाल लेते हैं वैसे ही उसके उदरमेंसे चाणक्यने खीर निकाल ली और चन्द्रगुप्तको जाकर जिमा दिया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त संध्या समय एक गाँवमें गये और चन्द्रगुप्तको किसी ठिकाने बैठा कर 'चाणक्य' भिक्षा समय गाँवमें निकला। दैवयोग पहले एक गरीबनी बुढ़ियाके घर जा पहुँचा, बुढ़ियाने उस वक्त खिचड़ी पकाई हुई थी और गरम गरम थालीमें निकाल कर अपने लड़कोंको जिमा रही थी। एक लड़का बहुत भूखा था अत एव उसने जल्दी जल्दी खानेके लिए खिचड़ीके बीचमें हाथ मारा, खिचड़ी बहुत गरम थी इस लिए उसका हाथ जल गया और हाथ जलनेसे लड़का चिल्ला कर रोने लगा। लड़केकी

यह चेष्टा देख कर बुढ़िया बोली—अरे मूर्ख! चाणक्यके समान तू भी अनजान ही रहा। यह सुन कर 'चाणक्य' उस बुढ़ियाके घरमें चला गया और बुढ़ियासे बोला—माई! इस बालकके ऊपर चाणक्यका यह क्या दृष्टान्त दिया? बुढ़िया बोली—चाणक्यने आसपासके नगर साधे विना ही नन्दकी मुख्य राजधानी पर चढ़ाई कर दी अत एव उसे नन्दके सैन्यने मार भगाया, इसी तरहसे इस लड़केने भी आसपासकी ठंडी खिचड़ी छोड़ कर गरम गरम बीचकी खिचड़ीमें हाथ मारा अत एव इसका हाथ जल गया। यह सुन कर 'चाणक्य' चकित होगया और उस बुढ़ियाकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगा, चाणक्यके दिलमें उस बुढ़ियाका दृष्टान्त बराबर असर कर गया इस लिये 'चाणक्य' अब चन्द्रगुप्तको साथ लेकर 'हिमवत्कूट' नामके नगरमें गया और वहाँ जाकर 'पर्वत' नामा राजासे चन्द्रगुप्तकी सहायताके लिए दोस्ती की। पर्वत राजा भी चाणक्यके वश होगया और उसने कह दिया कि बुद्धि तुम्हारी और बल मेरा, नन्दको थोड़े ही दिनोंमें उन्मूलित कर देंगे और उसका राज्य पीछे आधा आधा बाँट लेंगे। यह सलाह कर वे तीनों ही जने सैन्य लेकर नन्दके बाह्य देशोंको साधनेके लिये निकल पड़े। एक दिन बहुतसा जोर लगाने पर भी जब एक नगर उनसे न लिया गया तब 'चाणक्य' परिव्राजकका वेष कर भिक्षाके समय उस नगरका भेद लेनेके लिये नगरके अन्दर जा घुसा। सारे नगरमें चाणक्यने फिर कर देखा तो एक जगह नगरकी अधिष्ठातृ सात देवियोंके मठ बड़े प्राचीन देखे? उन-मठोंको देख कर चाणक्यने समझ लिया कि इस नगरके न कबजेमें आनेका कारण यही है कि जब तक इस नगरमें इन देवियोंके ये मठ कायम हैं तब तक यह नगर कदापि सर नहीं हो सकता, क्योंकि इन नगर अधिष्ठातृ देवियोंके ही प्रभावसे यह नगर ठहरा हुआ है, अब कोई ऐसा

उपाय निकालना चाहिये जिससे यह मठ उत्थापन होजायें । 'चाणक्य' विचार कर ही रहा था इतनेमें ही कई एक नगर निवासियोंने चाणक्यको योगीश्वर जान कर पूछा कि महाराज! कई दिनसे यह नगर शत्रु लोगोंने घेरा हुआ है इस लिये हम सब नगर निवासियोंका नाकमें दम आरहा है, आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे हमलोग इस कष्टसे मुक्त हों। जब यह सुन कर 'चाणक्य' कुछ मौनसा कर गया तब और भी आग्रहपूर्वक उन लोगोंने चाणक्यसे पूछा कि भगवन्! आप जैसे महात्मा तो सब कुछ जानते हैं आप कृपा कर इतना तो फरमाइये कि हम लोग इस कष्टसे कब तक छूट जायँगे? चन्द्रगुप्तगुरु 'चाणक्य' बोला—भाई! जब तक इस नगरमें ये माताओंके मठ कायम हैं तब तक तुम्हारा कष्टसे छूटना दुर्लभ है। योगीवेषधारी चाणक्यके मुखसे यह बात सुन कर नगरके सब आदमियोंने मिल कर उन मठोंको शीघ्र ही जड़मूलसे उखाड़ कर फैंकवा दिया। चाणक्यने चन्द्रगुप्त और पर्वतको यह संकेत दे दिया था कि एक दफा तुम यहाँसे कुछ पीछे भाग जाओ और फिर एकदम नगरमें आघुसो। अन्तमें ऐसा ही हुआ जब शत्रु सैन्यके चले जानेसे सारा नगर निश्चिन्त होगया तब एकदम जैसे कूही पर बाज पक्षी टूटकर पड़ता है वैसे ही पर्वत और चन्द्रगुप्तने उस नगर पर एकदम आक्रमण कर दिया और अनायास ही उस नगरको स्वाधीन कर लिया। इस प्रकार बाहरके देशको साध कर और बहुतसा सैन्य बढ़ा कर अब नन्दकी मुख्य राजधानी पाटलिपुत्र नगरपे चढ़ाई कर दी। इस वक्त नन्दका पुण्य कुछ क्षीण होगया था और उसके कोशमें भी अब कुछ न रहा था। जब नन्द चारों तर्फसे घिर गया और उसकी कुछ भी पार न बसाई तब उसने अपने प्राण बचानेके लिये चाणक्यसे कहा भेजा। चाणक्यने भी अब नन्दको दीन समझ कर कहा

दिया कि तू एक रथमें बैठ कर और जो कुछ तुझे अभिष्ट है उसे लेकर खुशीसे नगरसे निकल जा। इस तरहसे जाते हुएको तुझे कोई भी उपद्रव नहीं करे, बेशक निडर होकर निकल जा हम कुछ नहीं कहें। राजा नन्दने अपनी दो रानी, एक लड़की और कुछ धन एक रथमें भरके नगरसे निकलनेकी तैयारी की, । जब दरवाजेके पाससे नन्दका रथ निकला तब रथमें बैठी हुई जो नन्दकी युवती कन्या थी वह चन्द्रमाके समान चन्द्रगुप्तको देख कर चित्रलिखितके ससान हो गई और कामराग बढ़ानेवाले हावभावादि कटाक्ष करने लगी। उस लड़कीकी यह दशा देख कर नन्द बोला—जा बेटी तू स्वेच्छापूर्वक स्वयंवरा हो, क्षत्रीय कन्याओंको स्वयंवर ही शोभता है, बस अब देर मत कर रथसे उतर जा और मुझे छोड़, कल्याण हो तेरा तेरे साथ ही तेरे विवाहकी चिन्ता भी मुझसे दूर हुई। जब उसके पिताने यों कहा तो वह शीघ्र ही अपने पिताके रथसे उतर कर चन्द्रगुप्तके रथ पर चढ़ने लगी।

दैवयोग जब वह युवती चन्द्रगुप्तके रथ पर चढ़ने लगी तब चन्द्रगुप्तके रथके पैंयोंके नव आरे एकदम टूट गये, चन्द्रगुप्तने जब यह देखा कि यह कौन अमंगल करनेवाली स्त्री मेरे रथ पर चढ़ती है? जिसके चढ़ते हुए मेरे रथके एकदम नव आरे टूट गये, अमंगलकी बुद्धिसे 'चन्द्रगुप्त' उसका तिरस्कार करने लगा और उसे रथ पर चढ़नेसे रोकने लगा। 'चाणक्य' बोला—चन्द्रगुप्त! यह शकुन तुझे बड़ा अच्छा हुआ है तू इसे अपमंगल न समझ और उसे अपने रथमें खुशीसे बैठा ले, इस शुभ शकुनसे सदाकाल तेरे राज्यकी वृद्धि होगी और नव पुरुष युग तक तेरा वंश अखंड राज्य ऋद्धिको भोगेगा। चन्द्रगुप्तने अपने गुरु चाणक्यके कहनेसे उस युवतीको रथमें बैठा लिया। अब राजा पर्वत और चन्द्रगुप्त नन्दकी राजधानी प्राप्त करके

उसकी संपदाको परस्पर बाँटने लगे। नन्दके एक लड़की और भी थी उसे चलते समय नन्द राजा महलमें ही छोड़ गया था, वह लड़की भी बड़ी सुरूपा थी और उसे राजा नन्द हमेशा भोजनमें थोड़ा थोड़ा विष खिलाया करता था। उस युवतीको देख कर पर्वत राजाका उसके ऊपर अत्यन्त राग होगया। उन दोनोंका परस्पर अनुराग देख कर चन्द्रगुप्तके गुरु चाणक्यने उस युवतीको पर्वतके प्रति दे दिया और उसी वक्त उन दोनोंका पाणीग्रहण करा दिया। उस विष युवतीके संसर्गसे 'पर्वत' को भी जहर चढ़ गया और उसका सारा शरीर विषवेगसे शिथल होगया। इस प्रकार जब विषके वेगसे पर्वतका बुरा हाल होने लगा तब 'पर्वत' चन्द्रगुप्तसे बोला–चन्द्रगुप्त! किसी तरहसे मुझे बचा, मेरा तो हाल बिगड़ने लगा जैसे कि कोई विष खा लेता है और उसकी जो हालत होती है सो ही मेरी हो रही है, किसी तरह भी दवादारुसे मुझे बचाओ वरना मेरी मृत्युमें तो कोई शंका ही नहीं है। यह सुन कर जब 'चन्द्रगुप्त' मांत्रिक और वैद्य लोगोंको बुलवाने लगा तब चाणक्यने चन्द्रगुप्तको अपने पास बुला कर उसके कानमें इस प्रकार कहा–चन्द्रगुप्त! विना ही औषधके यह तेरा रोग दूर होता है इस लिये तू थोड़ी देर तक मौन धारण कर ले और 'पर्वत' की दवादारु करानेकी उपेक्षा कर दे, क्योंकि आधे राज्यको लेनेवाले मित्रको भी जो नहीं मारता है वह स्वयं नाशको प्राप्त होता है, इसको तो अपने आप मारना चाहिये था, मगर जब यह स्वयमेव मरता है तो तू अपने आपको बड़ा पुण्यवान् समझ। जब भृकुटी चढ़ा कर यों कह कर चाणक्यने चन्द्रगुप्तको पर्वतकी दवादारु करनेसे रोक दिया तब पर्वत भी थोड़ी ही देर बाद यमराजका अतिथि बन गया। 'पर्वत' जब मृत्युको प्राप्त होगया तब उसका हिस्सा भी चन्द्रगुप्तको ही मिल गया। अब 'चन्द्रगुप्त'

नन्दकी साम्राज्य लक्ष्मीको निष्कंटक तया भोगने लगा। इस प्रकार भगवान श्री महावीर स्वामिके निर्वाण बाद १५५ एकसौ पंचावन वर्ष पीछे नवमें नन्दकी राज्यगद्दी पर 'चन्द्रगुप्त' राजा हुआ। चन्द्रगुप्तके राज्यमें नन्दके अनुजीवी कितने एक लोग विषम स्थानोंमें रह कर चोरीकर्म किया करते थे, अत एव नगरकी रक्षा करनेके योग्य पुरुषकी खोजमें एक दिन 'चाणक्य' बाहर फिर रहा था। उसने एक जुलाहेके घर पर जाकर देखा तो वह 'जुलाहा' मकोड़ोंके बिल पर आग जला रहा है। चाणक्यने यह देख कर उससे पूछा कि तू यह क्या कर रहा है? 'जुलाहा' बोला—ये मकोड़े मेरे लड़केको चैन नहीं लेने देते बड़ा उपद्रव करते हैं अत एव इन सालोंका नाश करता हूँ। चाणक्यने मनमें विचारा कि यह आदमी दरोगा बनानेके योग्य है। जिस तरह यह इन मकोड़ोंको निर्मूलित करता है उसी प्रकार चोर जारोंको भी निर्मूल करेगा। यह विचार कर 'चाणक्य' चन्द्रगुप्तके पास आगया और उस 'जुलाहे' को बुलवा कर नगरका अध्यक्ष याने दरोगा बना दिया। उस नवीन दरोगाने भी उन चोर पुरुषोंको भोजन आदि देनेके लोभसे विश्वासमें लाकर थोड़े ही दिनोंमें निर्मूलित कर दिया। इधर जब 'चाणक्य' राज्यकी लिप्सामें फिरता था तब वह एक गाँवमें भिक्षाके लिये गया था, परन्तु उस गाँववाले लोगोंने चाणक्यको भिक्षा नहीं दी थी इसीसे अब चाणक्यने उन गाँववालोंको शिक्षा देनेके लिये बुला कर कहा कि तुम लोग आँबोंकी बाड़ बाँशोंको करो, यह आज्ञा पाकर उन गाँववालोंने बाँश काट कर आँबोंके चारों तर्फ लगा दिये और आकर 'चाणक्य' से कहा कि हुजूर! आपकी आज्ञानुसार बाँस काट कर हमने आँबोंकी बाड़ कर दी है। क्रोधसे आँखें लाल करके 'चाणक्य' बोला—अरे दुष्टो! मैंने तुम्हें क्या आज्ञा दी थी और तुमने यह

क्या किया? मैंने तो कहा था कि आँबोंसे बाँशोंकी बाड़ करना और तुमने उससे विपरीत किया। चाणक्यने इस प्रकार कृत्रिम दोष लगा कर पूर्वका बदला लेनेके लिये क्रोधमें आकर उस सारे गाँवको बाल वृद्ध सहित अग्निसे जला दिया।

एक दिन चन्द्रगुप्तका खजाना खाली होगया अत एव 'चाणक्य' ने यह कला खेली कि सोनेकी मोहरोंसे थाल भरके बैठ गया और नगरके धनाढ्य लोगोंको बुला कर बोला कि मेरे साथ जुवा खेलो और यह प्रतिज्ञा रही कि जो मुझे जीत लेवे वह इस सुवर्णकी मोहरोंके थालको ले लेवे और जिसे मैं जीत लूँ उससे मैं एक सुवर्णकी मोहर लूँगा। यह प्रतिज्ञा करके 'चाणक्य' उन धनाढ्य साहूकारोंके साथ कूटपाशोंसे खेलने लगा। 'चाणक्य' ने यह एक द्रव्योपार्जन करनेका उपाय निकाला था अत एव उसने उन कूटपाशोंसे सब साहूकारोंको जीत कर पहले तो अच्छे अच्छे भोजन कराये और पीछे बराँडी (मदिरा) पिलाके एक एक पानका बीड़ा खिलाया। जब वे लोग मदिराके नशेमें अपने आपको भूल गये तब चाणक्यने मदोन्मत्त होकर गाना नाचना शुरू कर दिया। अर्थोपार्जन—पण्डित 'चाणक्य' उन्मत्त होकर बोला—

वस्त्रे द्वे धातुरक्ते मे त्रिण्दडं स्वर्ण कुण्डिका।
नृपतिर्वशवर्ती च तद्वादयत झुम्बरीम्॥ १॥

अर्थात् धातुसे रँगे हुए मेरे पास दो वस्त्र, त्रिदण्ड, स्वर्णकी कूँडी और राजा भी मेरे वशवर्ती है अतः मेरे नामकी झुम्बरी (वाद्य विशेष) बजाओ, यह सुन कर पहले सिखाये हुए बाजेवालेने जब झुम्बरी बजाई तब उन नगरवासि पुरुषोंमेंसे एक जना उन्मत्त हो और दोनों हाथ ऊपरको उठा कर बोला-हजार योजन तक हाथी जाये और इतने मार्ग तक जितनी उस हाथीकी पैड़ (पद पंक्तियां) होवें उन सबको स्वर्ण मोहरोंसे पूर्ण कर

दूँ इतना द्रव्य मेरे पास है इस लिये मेरे नामकी भी एक झुम्बरी बजाओ, जब उसके नामकी बज चुकी तब दूसरा बोला—एक आढ़क (परिमाण विशेष) भरके तिल खेतमें बोये जायें और उनके जितने तिलके दाने होवें उतनी मेरे यहाँ सुवर्णकी गिन्नियें हैं अत एव मेरे नामकी भी एक झुम्बरी बजनी चाहिये। जब उसके नामकी बज चुकी तब तीसरा बोला—वर्षाकालमें जीतने पानीके पूरसे पर्वतकी नदी चलती है उस नदीके पूरको मेरी एक दिनकी गायोंका दिया हुआ नवनीत (मक्खन) रोक सकता है, अर्थात् मेरी गायोंके एक दिनके दिये हुए मक्खनसे पर्वतकी नदीके जल पूरको रोक सकता हूँ अत एव मेरे नामकी भी एक झुम्बरी बजनी चाहिये। चब उसके नामकी झुम्बरी बज चुकी तब चौथा बोला—मेरे यहाँ पर इतने घोड़ी घोड़े हैं कि यदि एक दिनके पैदा हुए बछेरोंकी केशरायें (कँधवाल) कतरके नगरको लपेटना चाहें तो सारा पाटलिपुत्र नगर मेरे एक दिनके पैदा हुए बछेरोंकी कँधवालसे वेष्टित हो जाय। जब उसके नामकी बज चुकी तब पाँचवाँ बोला—मेरे यहाँ एक ऐसी जातिके चावल हैं उनके बोनेसे भिन्न भिन्न जातिके चावल पैदा होजाते हैं और दूसरे ऐसे हैं कि एक दफा खेतमें बो दिये जाय़ँ तो वारंवार काटने पर भी वे फिर ऊग आते हैं। ये दो अपूर्व रत्न मेरे यहाँ हैं अत एव मेरे नामकी भी एक झुम्बरी बजाओ। इस प्रकारका जाल रच कर चाणक्यने उन साहूकारोंकी लक्ष्मी जान ली। जब उन सबका नशा उतर गया तब चाणक्यने चन्द्रगुप्तका कोश पूर्ण करनेके लिये उनमेंसे एकसे तो एक योजन हाथी पद प्रमाण मोहरें, दूसरेसे एक तिलके बोनेसे जितने तिल पैदा होवें उतनी मोहरें, तीसरेसे एक महीने पीछे एक दिनका पैदा हुआ घी, चौथेसे एक दिनके पैदा हुए बछेरे और पाँचवेंसे कोष्टागारको भरनेके लिये

चावल माँग लिये। उन साहूकारोंने भी चुपकेसे ही दे दिये क्योंकि 'चाणक्य' उनकी लक्ष्मीको उन्हींके कथनानुसार जान गया था। इस प्रकार चाणक्यने चन्द्रगुप्तका कोश पूर्ण कर दिया क्योंकि बुद्धिमान् मंत्री राजा लोगोंको कामधेनुके समान होते हैं। इधर जब वह बारह वर्षका दुष्काल पड़ने लगा तब सुस्थित नामा एक आचार्य महाराज अपने शिष्य परिवारके साथ चन्द्रगुप्तके नगरमें आ रहे थे। दुष्कालकी वजहसे वहाँ पर जब साधुओंको भिक्षा दुर्लभ होने लगी तब आचार्य महाराजने अपने शिष्य समुदायको वहाँसे सुभिक्षवाले देशमें भेज दिया और आप वहाँ ही रह गये। आचार्य महाराजने जो शिष्य समुदाय सुभिक्ष देशमें भेजा था उसमेंसे दो क्षुल्लक (छोटे) साधु रास्तेमेंसे पीछे लौट आये। जब आचार्य महाराजने उनसे पीछे आनेका कारण पूछा तब वे छोटे साधु बोले–भगवन्! हमसे आपके चरणोंका वियोग नहीं सहन होता अत एव हम तो आपके चरणोंमें ही रहेंगे, चाहे जीना हो या मरना हमें यहाँ ही श्रेयकारी है। आचार्य महाराज बोले–तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है क्योंकि बारह वर्षका महाविकराल काल पड़ना शुरू होगया है अत एव यहाँ रहनेसे तुम अपने ज्ञान ध्यानको भूल जाओगे और भिक्षाके अभावसे तुम्हारे प्राण रक्षणका भी शंसय है। जब आचार्य महाराजके भेजने पर भी वे गुरुभक्त साधु वहाँसे न गये तब गुरुमहाराजने उन्हें अपनी सेवामें ही रख लिया। उस बारह वर्षके दुष्कालमें अन्नके विना जब लोगोंकी बुरी हालत होने लगी तब उन बिचारे साधुओंको भी सारे नगरमें परिभ्रमण करनेपर भी अल्प ही भिक्षा मिलती है। मगर वे बिचारे गुरुभक्त साधु आप भूखे रह कर भी आचार्य महाराजकी सेवामें तत्पर रहते हैं। कुछ समय तो उन्होंने इसी तरह निकाला, मगर जब बिलकुल अल्प आहार मिलने लगा

तब उन्होंने विचारा कि भई अब तो भूखे रहनेसे गुरुमहाराजकी भक्तिमें खलल पड़ता है इस लिये अब तो कुछ उपाय करना चाहिये। उनमेंसे एक बोला–एक दिन आचार्य महाराज गीतार्थ साधुओंको पाठ दे रहे थे उस शास्त्रमें एक ऐसे दिव्यांजनका वरनन आया था कि उसे आँखोंमें आँजनेसे मनुष्य अदृश्य होजाता है, याने जो मनुष्य उस अंजनको अपनी आँखोंमें डाले उस मनुष्यको कोई भी नहीं देख सकता और वह सबको देख सके। इस लिए यदि गुरुमहाराजकी भक्ति निमित्त इस अवसरमें उस अंजनका प्रयोग किया जाय तो कोई दोष नहीं। यह विचार कर एक दिन उन दोनों साधुओंने उस दिव्यांजनको सिद्ध कर लिया और उसे अपनी आँखोंमें आँज कर अदृश्य होकर भोजनके समय नगरमें प्रवेश कर गये। अब वे अन्य स्थान पर न जाकर सीधे राजकुलमें ही चले गये और वहाँ जाकर राजा चन्द्रगुप्तके साथ बैठ कर उसकी थालीमें अच्छी तरहसे जीम आये। जब बहुतसा समय उनको इसी तरह करते हुए व्यतीत होगया तब चन्द्रगुप्तका शरीर कुछ क्षीण होने लगा, क्योंकि जितना भोजन उसके लिये उसकी थालीमें परोसा जाता था वह सब वे अदृश्य मुनि आकर चट्ट कर जाते थे।

चन्द्रगुप्तके दिलमें भी शंका पड़ने लगी कि जितना भोजन मेरे वास्ते पहले थालीमें परोसा जाता था उससे भी अधिक अब परोसा जाता है तथापि मैं भूखाका भूखा ही रहता हूँ। 'चन्द्रगुप्त' इस बातको अपने दिलमें ही रखता, किसीके भी सामने उसने यह बात प्रगट न की। तपस्वियोंके समान जब चन्द्रगुप्त प्रति दिन कृष्य होने लगा तब एक दिन चाणक्यने उससे एकान्तमें पूछा कि बेटा क्षयरोगीके समान तेरा शरीर प्रति दिन क्षीण क्यों होता जाता है? 'चन्द्रगुप्त' बोला–न जानें क्या बात है मुझे पहलेसे भी अधिक भोजन खानेको

परोसा जाता है मगर कुछ मालूम नहीं होता कौन भूत परेत आकर खाजाता है? मैं हमेशा भूखाका भूखा ही रह जाता हूँ। 'चाणक्य' बोला–तू आज तक भी मुग्ध ही रहा, जो इतने दिनसे तकलीफ पा रहा है और मुझे खबर तक भी न की, खैर अब तेरा भोजन खानेवालेको शीघ्र ही पकडूँगा। 'चाणक्य' ने ऐसी चिकनी और कोमल मिट्टी मँगवाई कि जिस पर सूई भी गिरे तो उसका भी निसान पड़ जाय। जहाँ पर 'चन्द्रगुप्त' भोजन किया करता था उस मकानमें चाणक्यने वह चिकनी मिट्टी डलवा कर एकसरखी करा दी। भोजन करनेके समय जब 'चन्द्रगुप्त' भोजनगृहसे भोजन करके निकला तब चाणक्यने वहाँ पर चन्द्रगुप्तसे जुदे और दो आदमियोंके पद चिन्ह देखे, इससे चाणक्यने निश्चय कर लिया कि ये कोई सिद्धांजन पुरुष हैं। ये अंजनके प्रभावसे अदृश्य होकर भोजन खा जाते हैं। अगले दिन चाणक्यने भोजनके समय चन्द्रगुप्तके भोजनगृहमें सघन धुवाँ करा दिया। वे साधु भी पूर्ववत् वहाँ आकर चन्द्रगुप्तके पास बैठ कर उसकी थालीमेंसे भोजन जीमने लगे। मगर जीमते जीमते धुवेंके मारे उनकी आँखोंका अंजन पानी पानी होकर निकल गया। अंजनके निकल जाने पर राजपुरुषोंने उन्हें वहाँ पर देख पाया और सबके सब क्रोधसे जल उठे। मगर चाणक्यके भयसे किसीने भी उनका तिरस्कार न किया। जब चाणक्यने उन साधुओंको देखा तो उसने विचारा कि किसी तरहसे प्रवचनका उड्डाह न होवे ऐसा उपाय करना चाहिये, यह विचार कर 'चाणक्य' चन्द्रगुप्तसे बोला–ओहो ये तो आपके पितृगण हैं। आपके ऊपर इनकी बड़ी कृपा है जो ये ऋषिवेष धारण करके आपके पास आते हैं, यों कह कर चाणक्यने उन साधुओंको वहाँसे विदा किया। जब वे दोनों साधु वहाँसे चले गये तब 'चन्द्रगुप्त' खेदपूर्वक बोला–इनके साथ उच्छिष्ट भोजन

खाते हुए मैं तो दूषित होगया, अब किस तरह शुद्ध होऊँगा? 'चाणक्य' बोला–बेटा गुणके अन्दर दोषारोपण न कर, मुनियोंके साथ आहार करनेसे तू बड़ा पुण्यवान् है । जो पुरुष ऐसे मुनियोंके प्रति दान देते हैं वे दुनियामें श्लाघ्यनीय हैं और जो उनके साथ बैठ कर एक भाजनमें खाते हैं उनका तो कहना ही क्या? ।

इस प्रकार चन्द्रगुप्तको समझा कर 'चाणक्य' आचार्य महाराजके पास गया और वहाँ जाकर उन क्षुल्लक साधुओंका दोष प्रगट करके आचार्य महाराजको उपालम्भ देने लगा । आचार्य महाराज यह बात सुन कर बोले–इन बिचारे छोटे साधुओंका क्या दोष है? जब तुम्हारे जैसे संघमें आगेवान ही स्वकुक्षिम्भर होगये । आचार्य महाराजका यह वचन सुन कर 'चाणक्य' ने हाथ जोड़ कर मिथ्या दुष्कृतपूर्वक कहा–भगवन्! आपने मुझ प्रमादीको अच्छी शिक्षा दी, आजसे लेकर जो कुछ भी साधुओंको अशन पानादि चाहिये सो कृपा कर मेरे मकानसे ग्रहण करें । इस प्रकारका अभिग्रह धारण करके और गुरुमहाराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर 'चाणक्य' अपने घर चला आया । अब धर्ममें दृढ मन करके 'चाणक्य' अपने समयको बिताता है । 'चन्द्रगुप्त' जन्मसे ही धर्मके मर्मको नहीं जानता था । वह असंयति लोगोंको ही धर्मगुरु समझता था अत एव चाणक्यने उसे धर्मके सन्मुख करनेके लिये शिक्षा देनी प्रारम्भ की । एक दिन 'चाणक्य' चन्द्रगुप्तसे बोला–बेटा! इन स्त्रीलंपट असंयतियोंके प्रति तू गुरु बुद्धि न रख क्योंकि धर्मेच्छु पुरुषको स्त्रीलंपट मनुष्योंके साथ बातचीत भी न करनी चाहिये तो फिर उनकी पूजा सेवा करनेकी तो बात ही क्या? । जिन्होंने अपने आपको गुरु कहला कर गुरुपनेका मार्ग नहीं जाना वे गुरु पाषाणकी नावके समान आपतो संसारसमुद्रमें डूबते ही हैं मगर आलम्बन लेनेवाले जनोंको

भी अपने साथ ही ले डूबते हैं । यह सुन कर 'चन्द्रगुप्त' विनय-पूर्वक चाणक्यसे बोला—मुझे आपका यह वचन गुरुवचनके समान माननीय है तथापि मैं यह प्रत्यय करना चाहता हूँ कि ये संयति नहीं । 'चाणक्य' बोला—अच्छा कल ही इस बातका प्रत्यय हो जायगा । चाणक्यने अगले दिन नगरमें उद्घोषणा करा दी कि राजा आज सब ब्राह्मणोंका धर्म सुनेगा अत एव सबने राजकुलमें आना । चाणक्यने उन सबके बैठनेके लिए राजाके अन्तेउरके पासमें ही जगह कराई और अन्तेउरकी दीवारके पास पास ऐसी चिकनी और कोमल मिट्टि डलवा दी जैसी पहले चन्द्रगुप्तके भोजन हरताको जाननेके लिए डलाई थी । जिस वक्त वे चन्द्रगुप्तके धर्म-गुरु आये तब चाणक्यकी आज्ञासे नौकरने उन्हें चाणक्यके कहे हुए स्थान पर बैठा दिया और कहा कि आप थोड़ी देर यहाँ बैठो राजाके आनेमें अभी कुछ थोड़ी देर है । जब नौकर उन्हें वहाँ बैठा कर चला गया तब वे स्त्री लोलुप दीवारके पास जाकर बारियों-मेंसे राजाके अन्तेउरको देखने लगे । वहाँ पर चाणक्यके प्रयोगसे जो चिकनी और कोमल मिट्टि डलाई हुई थी उस मिट्टिमें स्पष्ट तया उन पाखण्डियोंके पद चिन्ह पड़ गये । जब तक वहाँ पर राजा न आया तब तक वे पाखण्डि लोग गवाक्षोंमेंसे अन्तेउरको ही देखते रहे और जब राजा वहाँ आया तब झट अपने स्थान पर जा बैठे । जब वे लोग चन्द्रगुप्तको धर्म सुना कर अपने अपने घर पर चले गये तब 'चाणक्य' चन्द्रगुप्तसे बोला कि देख बेटा इन पाखण्डि-योंकी स्त्री लोलुपता, यों कह कर चाणक्यने चन्द्रगुप्तको अन्तेउरकी दीवारके पास गवाक्षोंके नीचे उन पाखण्डियोंकी पद पंक्तियाँ दिखाई और कहा कि देख जब तक हम यहाँ पर नहीं आये तब तक इन अजितेन्द्रियोंने गवाक्ष (बारी) मेंसे तेरे अन्तेउरको ही

देखा है। जब इस प्रकार उन पाखण्डियोंकी आचरणा देख कर चन्द्रगुप्तको प्रत्यय होगया तब अगले दिन 'चाणक्य' ने उसी प्रकार बैठक करके धर्म सुनानेके लिए जैन महात्माओंको बुलवाया। जैन महात्मा बड़े जितेन्द्रिय और अपने समयको व्यर्थ नष्ट नहीं करनेवाले होते हैं अत एव जब तक वहाँ पर राजा न आया तब तक उन्होंने वहाँ ही अपने आसन पर बैठ कर स्वाध्यायसे समय व्यतीत किया। जब जैन महात्मा राजाको धर्म सुना कर इर्या समिति शोधते हुए याने भूमिको देख कर पग रखते हुए अपने स्थान पर चले गये तब चन्द्रगुप्तसे 'चाणक्य' बोला—देख बेटा! धर्मगुरु ऐसे होते हैं, इन महात्माओंका आना और जाना किस प्रकारका है? और जब तक अपने यहाँ पर नहीं आये तब तक किस प्रकार उन्होंने अपने समयको निकाला? ये महात्मा अपने आसनको छोड़ कर कहीं भी इधर उधर नहीं भटके क्योंकि यदि ये महात्मा यहाँ पर इधर उधर फिरते तो अवश्यमेव इस चिकनी और कोमल मिट्टिमें इनकी पदपंक्ति भी प्रतिबिम्बित होजातीं। इस प्रकार जैन महात्माओंकी सुशीलता और जितेन्द्रियता देख कर चन्द्रगुप्तको जैन साधुओं पर श्रद्धा होगई, याने चन्द्रगुप्तकी जैनधर्म पर श्रद्धा जम गई।

एक दिन चाणक्यने विचारा कि अब चन्द्रगुप्तको भोजनमें थोड़ा थोड़ा विष खिलाना शुरू करूँ, जिससे इसका शरीर भी रसायन बन जावे और कभी भी किसीका खिलाया हुआ विष इसे असर न करे। यह विचार कर बुद्धिमान् 'चाणक्य' चन्द्रगुप्तको थोड़ा थोड़ा भोजनमें विष खिलाने लगा। मगर सिवाय चाणक्यके इस बातको अन्य कोई न जानता था। इस प्रकार चाणक्यने धीरे धीरे चन्द्रगुप्तका विषाहार इतना बढ़ा दिया कि यदि अन्य मनुष्य चन्द्रगुप्तके भोजनमेंसे एक ग्रास भी खावे तो फौरन ही प्राणोंसे मुक्त हो

जावे । एक दिन चन्द्रगुप्तकी रानी अत्यन्त रागमें आकर अपने पतिके साथ एक थालीमें ही भोजन करनेको बैठ गई । रानीके उदरमें पूरे दिनोंका गर्भ था अत एव बाहरसे आये हुए चाणक्यने चन्द्रगुप्तके साथ रानीको जीमती हुई देख कर भयभीत होकर कहा–अरे यह क्या अनर्थ कर डाला? चाणक्यका यह वचन सुन कर राजा सहित सब लोग भयभीत होगये । रानीने राजाके साथ दोचार ग्रास ही खाये थे इतनेमें ही वह बिचारी तो शीघ्र ही काल धर्मको प्राप्त होगई । रानीके प्राणापहार देख चाणक्यने शीघ्र ही शस्त्रसे उसका पेट चीर कर उस पूर्ण गर्भको ऐसे निकाल लिया जैसे छीपसे मुक्ताफल (मोति) निकाल लेते हैं । अभी तक उस बालकके सिर पर ही विषाहार–रसका बिन्दु पहुँचा था अत एव उस बालकका नाम चन्द्रगुप्तके गुरु चाणक्यने बिन्दुसार रक्खा । 'बिन्दुसार' जब धीरे धीरे योवन अवस्थाको प्राप्त हुआ तब एक दिन आयु पूर्ण होने पर समाधिपूर्वक काल करके 'चन्द्रगुप्त' देवलोकका अतिथि हो गया । चन्द्रगुप्तकी मृत्युके बाद चाणक्यने बिन्दुसारको राजगद्दी पर बैठा दिया । 'बिन्दुसार' भी चन्द्रगुप्तके समान ही चाणक्यकी आज्ञा मानता था । इधर चाणक्यने चन्द्रगुप्तके समयसे ही कार्य करनेके लिये नाम मात्रका ही एक सुबन्धु नामका मंत्री बनाया हुआ था । उस दुरात्मा मंत्रीने स्वतंत्र मंत्रीपदकी इच्छासे एक दिन एकान्तमें बिन्दुसारसे यह चुगली खाई कि राजन्! मैं कोई आपका विश्वासपात्र और प्रमाणभूत नहीं हूँ तथापि कुलीनोंकी फर्ज है कि अपने स्वामीसे कुछ बात छिपी न रक्खें । राजा बोला–क्या बात है? कह तो सही, 'सुबन्धु' बोला–राजन्! जिसको आप बड़ा विश्वासपात्र और गुरुके समान समझते हैं आपको कुछ मालूम है जो उसने अकृत्य किया था? जब आप गर्भके अन्दर ही थे तब उसने निर्दय

होकर आपकी माताश्रीका पेट शस्त्रसे चीर डाला था इस बातको सारा अन्तेउर जानता है । बिन्दुसारने यह बात सुन कर अपनी धायमातासे पूछा परन्तु वहाँसे भी यही उत्तर मिला कि हाँ चीर तो डाला था । यह सुन कर एकदम ही बिन्दुसार चाणक्यके ऊपर क्रु-धित होगया । 'चाणक्य' बड़ा दक्ष था अत एव वह बिन्दुसारकी आँखें बदली हुई देख कर झट समझ गया कि दुष्ट सुबन्धुने आज राजाको मुझसे विपरीत कर दिया है । चाणक्यने विचारा कि अहो! मैंने ही तो इस दुष्टको इस पद पर आरूढ किया और मुझे इसने उस उपकारका यह बदला दिया? । खैर इसके कुलके उचित यही बदला युक्त था, अब थोड़े दिनकी जिन्दगी रही है अब राज्यचि-न्तासे भी मुझे क्या काम? । अब तो समाधि मृत्युसे अपना परलोक सुधारूँ । मगर मेरी बुद्धिरूप पिशाचिनीसे ग्रस्त होकर यह कृतघ्न 'सुबन्धु' भी मंत्रीपद—सुखको न भोगे ऐसा उपाय करके मरना ठीक है, क्योंकि दुर्जनको दुर्जनताका फल चखाना ही चाहिये । यह विचार कर चाणक्यने योगमंत्रादिके प्रयोगसे बड़ी तीव्र गन्धवाली वस्तुयें और एक भोजपत्र लिख कर एक डब्बेके अन्दर बन्द करके उस डब्बेको लाक्षसे लपेट कर एक सन्दूकके अन्दर रखके उस सन्दूकको बहुतसे ताले लगा दिये । उस सन्दूकको अपने सर्वस्वके समान घ-रके एक कमरेमें रख कर चाणक्यने दीन दुखी अर्थी जनोंको दान देना शुरू कर दिया । जितना नग्द माल था उस सबको दान करके चाणक्यने नगरके बाहर सूखे आरनोंकी चिता बनाई और उस चि-ताके ऊपर बैठ कर चतुर्विध आहारको त्याग कर अनशन कर लिया । बिन्दुसारको जब अपनी धायमातासे अपनी माताकी मृत्युका यथार्थ पता मिला तब वह पश्चाताप करता हुआ जहाँ पर नगरसे बाहर 'चाणक्य' चितारूढ़ हुआ हुआ था वहाँ पर आया और चाणक्यसे

माफी माँग कर हाथ जोड़ कर बोला–मेरी भूल पर आप कुछ खयाल न करके मेरे राज्यकी सारसंभाल पूर्ववत् ही करो, मैं सदाकाल पिताके समान ही आपकी आज्ञामें रहूँगा । 'चाणक्य' बोला–राजन्! इस वक्त तो मैं अपने शरीर पर भी निस्पृह हूँ अब मुझे आपसे क्या और आपके राज्यसे क्या? जैसे समुद्र अपनी मर्यादामें दृढ रहता है वैसे ही चाणक्यको उसकी प्रतिज्ञामें निश्चल देख कर 'बिन्दुसार' निराश होकर अपने घर चला गया । बिन्दुसारको घर जाते ही सुबन्धु ऊपर अत्यन्त क्रोध आगया और उसे शिक्षा देनेकी ठान ली, जब सुबन्धुको यह बात मालूम पड़ी तब शीतकालमें जाड़ेसे ठरे हुये मनुष्यके समान काँपता हुआ वह राजाके पगोंमें आ पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला–राजन्! मैं आपका बड़ा भारी अपराधी हूँ क्योंकि मैंने जान कर बिचारे निर्दोष चाणक्यको दूषित किया अत एव हे देव! जब तक मैं 'चाणक्य' के पगोंमें पड़ कर माफी माँग आऊँ तब तक आप मुझ पर कृपा रक्खें ।

राजाकी आज्ञा पाकर 'सुबन्धु' अपनी जान बचानेके लिए कपटसे चाणक्यको खमाने गया । मायापूर्वक खमाते हुए सुबन्धुके दिलमें यह विचार पैदा हुआ कि यदि यह कदाचित् फिर अब नगरमें लौट आया तो मुझे सकुटुम्बको जानसे मरवाये बिन न छोड़ेगा, अत एव अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे यह जीता हुआ नगरमें न आवे । यह कुविचार कर सुबन्धुने राजासे आज्ञा माँगी कि राजन्! मुझे चाणक्यकी चन्दनादिसे पूजा करनी है क्योंकि ये मेरे उपकारी हैं और मैं इनका अपकारी हूँ । राजाकी आज्ञा लेकर उस दुष्ट कृतघ्न सुबन्धुने चाणक्यकी चितामें कुछ चन्दन डाल कर मायासे पूजोपचार करके पश्चात् उन सूखी हुई लड़ियोंमें जलती हुई धूप रख दी । उस धूपके रखनेसे चाणक्यकी चिता एकदम दहक

उठी । मगर चाणक्य तो पहलेसे ही चतुर्विध आहारका त्याग कर अनशन करके बैठा था अत एव उसने निष्प्रकंप होकर उस दहकती हुई ज्वालामें अपने प्राणोंको समर्पण करके स्वर्ग प्राप्त कर लिया । 'चाणक्य' के काल किये बाद सुबन्धुने चाणक्यके धनकी इच्छासे राजासे चाणक्यका घर रहनेके लिये माँगा । राजाने भी सुबन्धुको चाणक्यके घरमें रहनेकी आज्ञा दे दी । सुबन्धुने चाणक्यके घरमें जाकर बहुत तालोंसे जकड़ा हुआ हुआ उस सन्दूकको देखा । उस सन्दूकके बहुतसे ताले लगे देख कर सुबन्धुने विचारा कि इस सन्दूकमें चाणक्यका सर्वस्व होगा, अन्यथा इतने ताले लगानेका संभव नहीं होसकता । सुबन्धुने यह विचार कर उस सन्दूकको तोड़ डाला और जब उस सन्दूकके तोड़ने पर अन्दरसे लाक्षसे बन्द किया हुआ डब्बा निकला तब सुबन्धुने हर्षित होकर विचारा कि अवश्यमेव इस डब्बेमें कोई कीमती रत्न भरे हुऐ हैं इसी लिए इसको ऐसे प्रयत्नसे रक्खा है । सुबन्धुने उस डब्बेको तोड़ा तो उसके अन्दरसे सुगन्धि निकली, उस तीव्र सुगन्धिको देख तथा सूँग कर 'सुबन्धु' बड़ा विस्मित हुआ और जब गौरसे उस डब्बेको देखा तो उसमेंसे एक भूर्ज पत्र निकला । उस पत्रमें यह लिखा हुआ था कि जो आदमी इस गन्धको सूँग कर साधुके समान अपनी वृत्ति न रक्खेगा अर्थात् जो पुरुष इस गन्धको सूँग कर षड्रस भोजन करेगा और संसारके विषय भोगेगा वह आदमी शीघ्र ही यमराजका अतिथि बन जायगा । इस समाचारको बाँच सर सुबन्धुके छक्के छूट गये ।

॥ इक्कीसवाँ परिच्छेद ॥

संप्रति और आर्य सुहस्ती ।

सुबन्धुने इस बातको निश्चय करनेके लिए एक आदमीको वह गन्ध सूँगा कर उसे दिव्य भोजन कराया । भोजन करते ही जब वह आदमी काल धर्मको प्राप्त होगया तब सुबन्धुने निश्चय कर लिया कि हाँ चाणक्यका यह प्रयोग व्यर्थ नहीं है, अत एव वह अपने जीवितकी आशा रख कर और बन्धुजनोंसे रहित होकर साधुके समान बन कर पृथ्वी तल पर विचरने लगा ।

बिन्दुसारकी मृत्युके बाद उसका पुत्र 'अशोकश्री' राजगद्दीका मालिक हुआ । अशोकश्रीके लड़केका नाम कुणाल था, कुणालको बाल्यावस्थामें ही उसकी ओरमण माताके भयसे अशोकश्रीने उज्जयिनी नगरीमें परवस्त होनेके लिए भेज दिया था । वहाँ पर अच्छी तरहसे उसकी हिफ़ाजत होती थी । जब उज्जयिनीमें वृद्धिको प्राप्त होता हुआ 'कुणाल' आठ वर्षसे अधिक होगया तब कुणालके रक्षक पुरुषोंने राजा अशोकश्रीको खबर दी कि अब राजकुमार विद्याभ्यास करनेके योग्य होगया है । यह समाचार सुन कर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और स्वयमेव अपने हाथसे कुणालको विद्याध्ययन करानेके वास्ते राजाने उज्जयिनीको पत्र लिखा । सुगमतासे समझनेके लिए राजाने प्राकृतमें पत्र लिखा था । उस पत्रमें खुश खबरके उपरान्त कुमारको पढानेके लिये यह लिखा था कि–

कुमारो अधीयउ । जिस वक्त राजा अशोकश्रीने कुणालको यह पत्र लिखा था उस वक्त कुणालकी सपत्नी माता राजाके पास ही बैठी थी अत एव उसने राजाके पाससे वह पत्र उठा कर वाँच लिया । पत्रको वाँच कर रानीने विचारा कि राजाको कुणाल बड़ा प्रिय है इस लिए जो उसे राजगद्दी मिल गई तो मेरे लड़केको सदाकाल उसके अधीन रहना पड़ेगा । इस लिए कोई ऐसा उपाय करूँ जिससे कुणालको राजगद्दी न मिले और मेरे ही पुत्रको मिले । यह विचार कर रानीने आँख बचा कर पत्रमें जो 'अधीयउ' वाक्य लिखा हुआ था उसके अकार पर अपनी आँखोंमेंसे निकाल कर एक मषी—बिन्दु लगा दिया । राजाने प्रमादवश होकर उस पत्रको लिख कर विना ही वाँचे बन्द कर दिया और हलकारेके साथ उज्जयिनीको भेज दिया । कुणालको जब मालूम हुआ कि पाटलिपुत्रसे पिताश्रीका पत्र आया है तब उसके हर्षका पार न रहा । कुणाल अपने एक रक्षक पुरुषसे उस पत्रको वंचाने लगा, पत्रको वाँच कर उस आदमीके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और कारण पूछने पर भी वह उस पत्रका भाव न कह सका । कुणालने उस आदमीके हाथसे पत्र झट छीन लिया और अपने हाथमें लेकर वाँचने लगा । उस वक्त कुणालको साधारण तया वाँचना आता था, अत एव उसने जब यह वाक्य वाँचा कि 'कुमारो अंधीयउ' तब वह पिताभक्त 'कुणाल' विचारने लगा कि पिताश्रीने मुझे अंधा होजानेके लिए लिखा है, यदि मैं पिताश्रीकी आज्ञाको लोप करूँ तो मैं ही प्रथम मौर्य वंशमें बड़ोंकी आज्ञा लोपक कहा जाऊँगा, अत एव पिताश्रीकी आज्ञाको भंग तो न करूँगा चाहे जो हो, क्योंकि यदि मैं पिताकी आज्ञा भंग करूँ तो आगेके लिए सभी मेरा आलम्बन लेकर ऐसा किया करेंगे । यह विचार कर पिताभक्त कुणालने लोहेकी सलाई तपा कर आँखोंमें

देलीं। 'अशोकश्री' को जब यह मालूम हुआ कि पत्रमें इस प्रकारका लेख देख कर पिताकी आज्ञा खंडित न होवे इस विचारसे कुणालने साहस करके अपनी आँखें फोड़ डालीं तब राजा अशोकश्रीके हृदयमें वज्राहतके समान खेद हुआ और अपने आपकी नीन्दा करने लगा कि धिक्कार हो मुझ प्रमादीको जो मैंने पत्र लिख कर दुबारा न बाँचा। अहो! पुत्रकी मेरे प्रति कैसी असीम भक्ति और मुझ हताशयके प्रमादसे उसे यह समय आया जो मण्डलिक राज्यके भी योग्य न रहा। हा! आज मेरी आशालतायें दुर्दैवने निर्मूल कर दीं, जो मेरे ये मनोरथ थे कि इस वक्त युवराज पदको भोग कर मेरा पुत्र 'कुणाल' राज्यलक्ष्मीका स्वामी होगा, सो तो इस वक्त स्वप्नके समान विफल ही होगये। इस प्रकार अपनी आत्माकी नीन्दा करते हुए अशोकश्री राजाने अपने पुत्र कुणालको बहुत आमदनीवाले गाँव देकर उसे उज्जयिनीका राज्य दे दिया। कुणालको संसारके सुख भोगते हुए कुछ समयके बाद सर्व लक्षण संपन्न एक पुत्र पैदा हुआ। दासी द्वारा पुत्रका जन्म सुन कर 'कुणाल' बड़ा हर्षित हुआ और दासीको वर्धापनिका दान देकर कुणालने पुत्र जन्मोत्सव किया। कुणालको यह बात मालूम हो गई थी कि मेरे अन्धा होनेमें मेरी ओरमण माता ही कारणभूत है और पिताका मेरे पर असीम प्रेम था, अत एव अब पुत्र पैदा होने पर कुणालने सोचा कि हाँ अब माताके मनोरथ विफल करनेका समय आया है। यह विचार कर राज्यकी इच्छासे 'कुणाल' पाटलिपुत्र नगरमें आया। 'कुणाल' संगीत विद्यामें बड़ा प्रवीण था अत एव उसने पाटलिपुत्र नगरमें जाकर गाना बजाना शुरू कर दिया, 'कुणाल' के संगीतमें इतनी शक्ति थी कि उसने संगीत विद्यासे सारे पाटलिपुत्र नगरको अपने वश कर लिया। जहाँ पर जाकर कुणाल गाता है वहाँ पर सभी लोग हरिणके समान

भागे चले आते हैं । यह बात फैलती फैलती दो चार दिनमें राजा अशोकश्रीके कान तक भी जा पहुँची कि नगरमें कोई एक ऐसा सूरदास गवैया आया है कि उसने सारे नगरको मोहित कर दिया, अत एव राजाने खुद उसे बुलवा कर और राजसभामें चिक डलवा कर उसका गाना शुरू कराया । गायकको चिकके अन्दर इस लिए बैठाया गया था कि पहले कालमें राजा लोग अन्धे पुरुषका मुँह देखना अपमंगल समझते थे । कुणालने राग आलापते हुवे एक श्लोक बोला वह श्लोक यह था–

प्रपौत्रश्चन्द्रगुप्तस्य, बिन्दुसारस्य नप्तृकः ।
एषोऽशोकश्रियः सूनुरन्धो मार्गति काकिणीम् ॥ १ ॥

इस श्लोकको सुन कर राजा 'अशोकश्री' बड़ा विस्मित हुआ और बोला–अरे गायक! तू अपना नाम तो बता तेरा नाम क्या है? गायक बोला–राजन्! मैं वही आपका पुत्र कुणाल हूँ जो आपका लेख वाँच कर आपकी आज्ञा पालन करनेके लिए स्वयमेव अन्धा होगया था । यह सुन कर राजाने एकदम ही चिकके पड़देको उठवा दिया और कुणालको पैछान कर सजल नेत्र होकर अपनी छातीसे लगा लिया । राजा बोला–पुत्र! तू क्या चाहता है? जो तू माँगे सो दूँ, 'कुणाल' बोला–देव! मैं आपसे एक काकिनी याचता हूँ । राजाने जब इस समस्याको न समझा तब मंत्री बोला–राजन्! काकिनी शब्दसे राजपुत्र राज्यकी याचना किया करते हैं । कुणालसे राजा बोला–पुत्र! तू राज्य लेकर क्या करेगा? क्योंकि चक्षुहीन होनेसे तू तो परवश हुआ है । 'कुणाल' बोला–पिताजी आपकी कृपासे मेरे पुत्र पैदा हुआ है अत एव आप उसको राज्याभिषेक कर दें । राजा बोला–तेरे पुत्र कब पैदा हुआ? 'कुणाल' हाथ जोड़ कर बोला–पिताजी! संप्रति, याने अभी हुआ है । यह सुन कर राजाने

उसी दम सवारी भेज कर उस बालकको पाटलिपुत्र नगरमें बुलवा लिया और बड़ी धूम धामसे उसका जन्मोत्सव किया। कुणालने राजाके पूछने पर उत्तरमें संप्रति शब्द कहा था अत एव राजाने उस बालकका नाम 'संप्रति' ही रक्खा। 'संप्रति' जब दश दिनका हुआ राजाने तबसे ही उसे अपनी राजगद्दीका मालिक बना दिया। अब 'संप्रति' बड़े प्रयत्नसे रक्खा हुआ द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त होने लगा। 'संप्रति' बड़ा पुण्यात्मा और पराक्रमी था अत एव जब वह यौवन अवस्थाको प्राप्त हुआ तब उसने अपने पराक्रमसे भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंको अपने स्वाधीन कर लिया, याने दक्षिणार्ध भरतक्षेत्रका स्वामी बना। अब इन्द्रके समान प्रचण्ड शासनसे 'संप्रति' अपनी प्रजाको पालता है।

इधर उस भयंकर दुष्काल पड़ने पर जब साधुसमुदायको भिक्षाका अभाव होने लगा तब सब ही साधु लोग निर्वाहके लिए समुद्रके समीपके गाँवोंमें चले गये। भिक्षाके अभावसे जब साधुओंका निर्वाह दुष्कर होगया तब जो कुछ विद्याध्ययन किया हुआ था उसे वे भूलने लगे और नवीन अभ्यास करनेसे बन्द होगये, क्योंकि विना परिवर्तन किये तो बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी भी विद्या नष्ट होजाती है। जब वह बारह वर्षका विकराल दुष्काल बीत गया तब पाटलिपुत्र नगरमें समस्त संघने मिल कर श्रुतज्ञानका मिलान किया तो ग्यारह अङ्ग मिले मगर बारहवाँ अङ्ग दृष्टिवाद न मिला। उस समय नेपाल देशके मार्गमें चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्री 'भद्रबाहु' स्वामी विचरते थे। संघने साधुसमुदायको पढ़ानेके लिए श्री 'भद्रबाहु' स्वामीको बुलानेके वास्ते दो मुनियोंको भेजा। उन दोनों मुनियोंने वहाँ जाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार करके कहा कि भगवन्! संघने हमें आपको बुलानेके लिए भेजा है और श्री संघकी यह

आज्ञा है कि आप पाटलिपुत्र नगरमें पधारें और वहाँ पर साधुसमुदायको बारहवें अङ्ग दृष्टिवादकी वाँचना दें। श्री 'भद्रबाहु' स्वामी बोले-मैंने इस वक्त महाप्राण नामा ध्यानकी आराधना शुरू की है और बारह वर्षमें जाकर यह ध्यानसिद्ध होगा, इस ध्यानके सिद्ध होने पर कभी कार्य पड़े तो एक मुहूर्त मात्रमें चतुर्दश पूर्वको अर्थ सहित गुग सकते हैं, याने इस ध्यानके अन्दर ऐसी शक्ति है कि जिसको यह सिद्ध हो जाय वह साधु अर्थ सहित चतुर्दशपूर्वको एक मुहूर्त मात्रमें परिवर्तन कर सकता है। इस लिए मेरा आना पाटलिपुत्र नगरमें नहीं बन सके।

जब उन दोनों मुनियोंने पाटलिपुत्र नगरमें आकर संघके सामने यह बात सुनाई तब श्री संघने दूसरे दो मुनियोंको भेजा और उनसे कह दिया कि तुमने वहाँ जाकर यों कहना कि भगवन्! जो श्री संघकी आज्ञा न माने उसे क्या प्रायश्चित्त देना चाहिये? यह पूछने पर जब वे कहें कि उसे संघसे बाहर कर देना चाहिये तब तुमने कहना कि इस प्रायश्चित्तके योग्य आप ही हैं और आपको ही श्री संघ यह प्रायश्चित्त देना चाहता है। उन मुनियोंने श्री भद्रबाहुके पास जाकर वैसे ही पूछा और श्री भद्रबाहु स्वामीने भी यही फरमाया कि जो मनुष्य श्री संघकी आज्ञा न माने उसे संघसे बाहर करना चाहिये। मुनि बोले-भगवन्! आप ही इस प्रायश्चित्तके योग्य हैं अत एव आपको श्री संघ यह प्रायश्चित्त फरमाता है।

यह सुन कर श्री 'भद्रबाहु' स्वामी बोले-भगवान संघ ऐसा मत करो, किन्तु यह करो कि मुझ पर कृपा कर बुद्धिमान् साधुओंको यहाँ भेजो, मैं टाइम निकाल कर उन्हें सात वाँचनायें दूँगा, एक वाँचना भिक्षाचर्याके बाद और तीन काल वेलामें एवं तीन ही वाँचनायें सायंप्रतिक्रमणके बाद दूँगा। इस प्रकार प्रति दिन सात वाँच-

नायें देकर साधुओंको पढ़ाऊँगा । इस तरह श्री संघका कार्य भी हो जायगा और मेरे कार्यमें भी बाधा नहीं पहुँचे । उन दोनों साधुओंने पीछे आकर संघको यह समाचार सुना दिया । श्री संघने भी यह बात मंजूर कर ली और स्थूलभद्रादि बुद्धिमान पाँचसो ५०० साधुओंको दृष्टिवाद पढ़नेके लिए श्री भद्रबाहु आचार्यके पास भेजा । आचार्य महाराज भी साधुओंको प्रति दिन सात वाँचनायें देकर पढ़ाने लगे । मगर वाँचना थोड़ी मिलनेसे साधुओंका मन न जमा अत एव कुछ समयके बाद स्थूलभद्रके सिवाय सब ही साधु पीछे लौट आये । अब वह सारा टाइम स्थूलभद्रको ही मिलने लगा । 'स्थूलभद्र' महा प्रज्ञावान थे अत एव उन्होंने श्री भद्रबाहु आचार्यके पाससे आठ वर्षमें आठ पूर्वकी विद्या पढ़ ली । एक दिन आचार्य महाराजने स्थूलभद्रसे कहा-क्यों कुछ तेरा भी मन उद्भ्रम हुआ है क्या? 'स्थूलभद्र' बोले-भगवन्! मेरा मन उद्भ्रम तो नहीं हुआ । किन्तु वाँचना बहुत अल्प मिलती है । आचार्य महाराज बोले-अब प्राय मेरा ध्यान भी पूरा होने आया है, जब यह ध्यान पूर्ण हो जायगा तब तेरी इछानुसार तुझे वाँचना दूँगा । 'स्थूलभद्र' बोले-भगवन्! मैंने कितना अध्ययन किया है और कितना अभी बाकी रहा है? आचार्य महाराज बोले-अभी तो समुद्रमेंसे तूने एक बिन्दु मात्र प्राप्त किया है और समुद्रके जितना बाकी रहा है । कुछ समय बाद जब आचार्य महाराजका महा प्राण नामा ध्यान पूर्ण होगया तब स्थूलभद्रको यथेच्छ वाँचना मिलने लगी अत एव स्थूलभद्रने थोड़े ही समयमें दो वस्तु कम दशपूर्वको पढ़ लिया । एक दिन विहार करते करते गुरुमहाराज पाटलिपुत्र नगरके बाह्योद्यानमें आकर ठहरे । उस समय 'स्थूलभद्र' की बहिनें जो स्थूलभद्रके पीछे दीक्षा ले गई थीं, उन्होंने आचार्य महाराजके साथ स्थूलभद्रका वहाँ आना सुना, अत

एव वे वहाँ पर वन्दन करनेके लिए आई । आचार्य महाराजको वन्दन कर यक्षा आदि साध्वियोंने पूछा कि भगवन्! हमारे भाई 'स्थूलभद्र' कहाँ है? आचार्य महाराज उधरको इसारा करके बोले—वह सामने जो देवकुल देख पड़ता है वहाँ पर स्वाध्याय करता है ।

जब वे साध्वियें वहाँ पर स्थूलभद्र महाराजको वन्दन करनेको गई तब श्री स्थूलभद्रने उन्हें आश्चर्य दिखानेके लिए सिंहका रूप धारण कर लिया । साध्वियें वहाँ पर सिंहको बैठा देख कर भयभीत होकर पीछे लौट आई और गुरुमहाराजके पास आकर बोलीं—भगवन्! वहाँ तो एक सिंह बैठा है अत एव इससे मालूम होता है कि भाईको सिंहने मार डाला होगा क्योंकि अभी तक भी वह सिंह वहाँ ही बैठा है । आचार्य महाराजने अपने श्रुतज्ञानमें उपयोग देकर कहा कि जाओ वहाँ पर तुम्हारा भाई ही बैठा है सिंह नहीं है उसे जाकर वन्दन करो । आचार्य महाराजके कहनेसे वे साध्वियें फिरसे वहाँ गई और वहाँ पर स्थूलभद्रको देख कर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । अपने भाई स्थूलभद्रको वन्दन करके 'यक्षा' साध्वी बोली—भाई! जब आपके पीछे हमने दीक्षा ली थी तब छोटे भाई श्रीयकने भी हमारे साथ ही दीक्षा ली थी । मगर वह इतना सुकुमार था कि उसे नवकारसीका भी प्रत्याख्यान (पचक्खान) करना दुष्कर होता था । एक दिन पर्युषणामें मैंने उसे कहा कि भाई आज तो पर्वका दिन है अत एव आज तो पोरसीका प्रत्याख्यान करना चाहिये । उसने मेरे कहनेसे पोरसी कर ली, पर जब पोरसीका समय होगया तब मैंने कहा कि भाई यह पर्वका दिन बड़ा दुर्लभ है और इतना समय तो चैत्य परिपाटीमें खुशीसे निकल जायगा अत एव परिमुढका प्रत्याख्यान कर लो । फिर भी उसने दाक्षण्यतासे वैसे ही कर लिया, जब चैत्यपरिपाटी करते हुए संध्या समय

होने आया तब मैंने कहा कि भाई! अब रात्रि तो सोते सोते ही निकल जायगी इस लिए आज उपवास कर लेना अच्छा है। उसने भी मेरे कहने मुजब ही कर लिया। पर जब रात पड़ी तब उसे भूखकी पीड़ाने अत्यन्त सताया। परिणाम यह निकला कि उसी रातको 'श्रीयक' भूखकी पीड़ासे देवगुरुका स्मरण करते करते देवलोकको प्राप्त होगया। जब इस प्रकार 'श्रीयक' की मृत्यु होगई तब मुझे बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ और मुझसे ऋषिघात हुआ इसका प्रायश्चित्त लेनेके लिए मैंने श्री संघसे प्रार्थना की। उस वक्त श्री संघने कहा कि बहिन! तुमने शुद्ध परिणामसे यह काम किया था तो भी उसकी मृत्यु आ लगी तो इसमें तुम्हें कुछ प्रायश्चित्त नहीं। मैंने कहा यदि साक्षात् जिनेश्वर देव अपने मुँहसे यह कहें कि तू निर्दोष है और तुझे कुछ प्रायश्चित्त नहीं लगा, तो मेरे हृदयका शल्य जाय अन्यथा नहीं। ऐसा होने पर श्री समस्त संघने कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करने पर उसी वक्त शासन देवीने प्रगट होकर कहा कि बोलो संघका क्या कार्य है जिसे मैं करूँ?। संघने देवीसे कहा कि इस साध्वीको महाविदेह क्षेत्रमें भगवान श्री सीमन्धर स्वामीके पास ले जा, जिससे इसके हृदयकी शंका दूर हो जाय। 'देवी' बोली–अच्छा मैं इसे ले जाती हूँ पर निर्विघ्न गतिके लिए तब तक तुम लोग कायोत्सर्ग करके खड़े रहो। संघने भी वैसा ही किया। 'शासन देवी' मुझे जिनेश्वर देव श्री 'सीमन्धर' स्वामीके पास ले गई, वहाँ जाकर मैंने भगवान श्री सीमन्धर स्वामीको सभक्ति नमस्कार किया और श्री जिनेश्वर देव भगवान बोले कि भरतक्षेत्रसे आई हुई यह साध्वी निर्दोष है। यह सुन कर मैं निःसंदेह हो गई और शासन देवीने मुझे फिर यहाँ ला छोड़ी। मैंने भगवान श्री सीमन्धर स्वामीके मुखसे उनकी देशनामें चार चूलिकायें सुनी थीं, उनके नाम

'भावना,' 'विमुक्ति,' 'रतिकल्प' और 'विचित्रचर्या' थे । ये चारों ही चूलिकायें मैंने भगवानके मुँहसे सुन कर याद कर लीं और यहाँ आकर आख्यानपूर्वक श्री संघको समर्पित कर दीं । उनमेंसे दो चूलिकायें तो संघने आचाराङ्ग सूत्रमें प्रथम ही दो अध्ययन तया दाखल की हैं और दो चूलिकायें दशवैकालिक सूत्रमें नियोजित की हैं । इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुना कर 'यक्षा' श्री स्थूलभद्रको वन्दन करके सपरिवार अपने स्थान पर चली गई । इधर श्री 'स्थूलभद्र' आचार्य महाराजके पास वाँचना लेनेको गये । 'स्थूलभद्र' ने गुरुमहाराजको वन्दन करके जब वाँचनाके लिए याचना की तब गुरुमहाराजने कहा—बस जाओ आजसे तुम वाँचनाके योग्य नहीं हो । यह सुन कर स्थूलभद्रने अपने दीक्षा दिनसे लेकर उस समय तक अपने ज्ञानमें उपयोग देकर देखा कि आज मुझसे गुरुमहाराजका कोई अपराध हुआ है? । पर जब उन्हें अपना अपराध कुछ भी मालूम न पड़ा तब वे हाथ जोड़ कर बोले कि भगवन्! मुझे तो कुछ याद नहीं आता मुझसे क्या अपराध हुआ? । गुरुमहाराज बोले—अच्छा भाई! अपराध करके भी तू नहीं मानता तो कल्याण हो तेरा और तेरा किया हुआ गुनाह भी शान्त हो । कुछ देरमें विचार करने पर 'स्थूलभद्र' समझ गया कि मैंने जो सिंहका रूप धारण किया था उसी अपराधसे गुरुमहाराज मुझे वाँचना नहीं देते और इसीसे अयोग्य कहते हैं । जब स्थूलभद्रको यह बात मालूम हो गई तब वे शीघ्र ही लज्जासे कुछ शरमिन्दा होकर गुरुमहाराजके पगोंमें पड़ गये और बोले—भगवन्! अब फिर कभी ऐसा न करूँगा, आप मेरे अपराधको क्षमा करें ।

गुरुमहाराज बोले—बस अबसे वाँचना न मिलेगी । स्थूलभद्रने गुरुमहाराजको मनानेके लिए श्री संघको इकट्ठा किया । संघने भी

स्थूलभद्रकी तर्फसे गुरुमहाराजको बहुत ही प्रार्थना की, क्योंकि बड़े पुरुष जब कुपित होजाते हैं तब वे बड़ोंसे ही मानते हैं । आचार्य महाराज संघके सामने बोले कि जिस तरह आज इसने किया है ऐसे ही आगेको भी साधु किया करेंगे क्योंकि अबसे लेकर प्राय मन्दबुद्धि और बाह्याडम्बरवाले जीव बहुत होंगे अत एव इसको यही शिक्षा है कि आगे वाँचना न देना और बाकीके अवशिष्टपूर्व मेरे ही पास रहें, संघने बड़े आग्रहसे कहा तो आचार्य महाराज श्रुतज्ञानमें उपयोग देकर स्थूलभद्रसे बोले–अच्छा आगेके शेष पूर्व तूने किसीको पढ़ाने नहीं, यह अभिग्रह करा कर आचार्य महाराजने स्थूलभद्रको शेषपूर्वोंकी वाँचना दी । महामति श्री 'स्थूलभद्र' जब चतुर्दश पूर्वधर होगये तब उन्हें आचार्य महाराज श्री भद्रबाहु स्वामीने अपने पदसे विभूषित किया । भगवान श्री महावीर स्वामीके मोक्ष गये बाद एकसौ सत्तर १७० वर्ष व्यतीत होने पर श्री 'भद्रबाहु' स्वामी अपने पट्ट पर श्री स्थूलभद्रको निविष्ट करके स्वर्गवास होगये । अब पूर्ण श्रुतसागरको धारण करनेवाले श्री 'स्थूलभद्र' स्वामी भव्यजनार–विन्दोंको बोध करनेमें सूर्यके समान भूमण्डल पर विचरते हैं । एक दिन आचार्य श्री 'स्थूलभद्र' सपरिवार विहार करते हुवे श्रावस्ती नगरीके बाह्योद्यानमें पधारे, आचार्य महाराजका आगमन सुन कर श्रावस्ती नगरीके सर्व जन उन्हें भक्तिपूर्वक वन्दन करनेके लिए आये । भगवान श्री स्थूलभद्र स्वामीने नगरवासि जनोंको आये देख उनके कल्याण निमित्त धर्मदेशना शुरू कर दी, देशना समाप्त होने पर श्री स्थूलभद्र स्वामीने वहाँ आये हुवे मनुष्योंमें अपने पूर्वमित्र 'धनदेव' को न देख कर विचारा–अवश्यमेव 'धनदेव' कहीं बाहर गया हुआ है वरना मेरे ऊपर स्नेहवाला होनेसे वह तो सबसे पहले आता । अथवा उसका शरीर कुछ नरम

गरम होगा अन्यथा तो आये विन न रहे। श्री स्थूलभद्र महाराजका गृहस्थपनेसे ही धनदेव ब्राह्मणके साथ गाढ स्नेह था अत एव उन्होंने खुद धनदेव ब्राह्मणके घर जानेकी तैयारी की। बहुतसे श्रावक और श्राविकाओंसे परिवरे हुवे भगवान श्री 'स्थूलभद्र' स्वामी नगरीमें जिनेश्वर देवके चैत्योंको वन्दन करते हुए अपने पूर्वमित्र 'धनदेव' के घर पधारे। जंगमकल्प वृक्षके समान आते हुए भगवान श्री स्थूलभद्रको देख कर धनदेवकी स्त्रीने खड़ी होकर उनका विनय किया और जमीन पर मस्तक लगा कर उन्हें भक्तिपूर्वक वन्दन किया। पश्चात् धनदेवकी पत्नीने गुरुमहाराजको एक आसन बिछा दिया, आचार्य महाराज भी उस आसनकी प्रतिलेखना कर उस पर बैठ गये। जब भगवान श्री स्थूलभद्रने धनदेवकी पत्नी धनेश्वरीसे यह पूछा कि भद्रे! तेरा पति धनदेव नहीं देख पड़ता सो क्या कारण है? तब धनेश्वरी बोली—भगवन्! घरमें जितना धन था वह सब व्यय होगया और पूर्वजोंकी धरोरका पता न लगा अत एव धनहीन होनेसे शहरमें उनका अपमान होने लगा क्योंकि—

अर्थाः सर्वत्र पूज्यन्ते न शरीराणि देहिनाम्।

परन्तु निर्भाग्य मनुष्योंके पास रहा हुआ भी निधान द्वीपान्तर होजाता है। निधन होनेसे नगरीमें जब उनकी बहुत ही लघुता होने लगी तब वे वणिक व्यापारसे द्रव्योपार्जन करनेके लिए परदेश चले गये हैं। आचार्य महाराज श्री 'स्थूलभद्र' स्वामीने अपने श्रुतज्ञान बलसे उसके घरमें धनका निधान गडा देख कर उसे बतानेके लिए धर्मदेशना शुरू कर दी और जिस स्तंभके नीचे धन दबा हुआ था उस स्तंभकी ओर धर्मदेशना देते समय वारंवार हाथ उठाते हैं, इस प्रकार देशना देते हुए आचार्य महाराज उस स्तंभकी तर्फ हाथ उठा कर धनेश्वरीको बोले—भद्रे! देख संसारकी कैसी विचित्र गति है तेरा

घर तो इस प्रकारका है और पति द्रव्योपार्जन करनेको परदेश गया है, संसारका स्वरूप ही ऐसा है। इस प्रकार धर्मदेशनामें हस्तसंज्ञासे धनेश्वरीको उस स्तंभको लक्षित करा कर कृपानिधि आचार्य महाराज श्री 'स्थूलभद्र' वहाँसे आगे विहार कर गये। कुछ समयके बाद बहुतसे देश देशान्तर भटक कर और लाभोदय कर्म रहित होकर जब धनदेव अपने घर आया तब धनेश्वरीने उसे स्थूलभद्राचार्यका आना सुनाया, श्री स्थूलभद्र स्वामीका अपने घर पर आगमन सुन कर धनदेव हर्षित होकर पूछने लगा कि यहाँ आकर भगवान श्री 'स्थूलभद्र' कुछ बोले थे? धनेश्वरी बोली–हाँ यहाँ पर बैठ कर उन्होंने धर्मदेशना दी थी और देशनाके अन्दर वारंवार उन्होंने इस स्तंभकी ओर हाथ उठाया था, स्तंभकी ओर वारंवार हाथ उठानेका उनका कुछ उद्देश्य जरुर था, मगर मैं उस उद्देशको समझ न सकी। यह सुन कर धनदेवने अपने मनमें सोचा कि उस महात्माकी चेष्टा विना अभिप्राय तो हो ही नहीं सकती अत एव उन्होंने जो इस स्तंभको उद्देश्य कर इसकी ओर देशनामें वारंवार हाथ उठाया है तो अवश्यमेव इस स्तंभके नीचे धननिधि होना चाहिये, यह विचार कर धनदेवने उस स्तंभके अधो भागको खोद डाला। जमीन खोदनेकी ही देर थी वहाँसे धनदेवके पुण्य समूहके समान बहुतसा द्रव्य निकल पड़ा। उस धनके प्रभावसे अब 'धनदेव' धनदके समान ऋद्धिवाला होगया। परन्तु मनमें यही समझता है कि यह सब कृपा पूर्वमित्र श्री स्थूलभद्र महात्माकी ही है।

एक दिन 'धनदेव' अपने मित्र और परमोपकारी श्री स्थूलभद्र महाराजको वन्दन करनेके लिए पाटलिपुत्र नगर आया और वहाँ आकर सपरिवार श्री स्थूलभद्र महात्माको सहर्ष भक्तिपूर्वक वन्दन करके उनके सामने बैठ गया। 'धनदेव' हाथ जोड़ कर स्थूल-

भद्र महाराजसे–बोला भगवन्! आपकी कृपासे मैं दारिद्र्यरूप समुद्रको तरा हूँ अत एव आप ही मेरे स्वामी हैं। मैं आपका अनृण कदापि नहीं हो सकता, तथापि आप मुझ पर कृपा कर कुछ कार्य फरमावें जो मैं कर सकूँ। निष्कारण परोपकारी भगवान श्री 'स्थूलभद्र' स्वामी बोले–भद्र! जिस दोष रहित जिनधर्मकी यह महिमा देखते हो उस सर्वज्ञ प्रणित धर्मको अंगीकार कर लो। धनदेवने वहाँ पर ही आचार्य महाराजके पास समझपूर्वक मन वचन कायासे श्री सर्वज्ञ देवके धर्मको अंगीकार कर लिया और उस दिनसे लेकर वैसा ही पालन किया। आचार्य श्री स्थूलभद्रके दो शिष्य थे जिसमें बड़ेका नाम आर्यमहागिरि और छोटेका नाम आर्यसुहस्ती था। उन दोनोंको बाल्यावस्थासे माताके समान आर्या 'यक्षा' ने पाला था अत एव उनके नाममें पहले आर्य शब्द नियुक्त किया गया। 'आर्यमहागिरि' और 'आर्यसुहस्ती' ये दोनों ही बड़े पवित्र चरित्रवाले, भव भीरु और धर्मरक्षक थे अत एव वे अप्रमत्त होकर सदैव निरतिचार चारित्र पालते थे। उन दोनोंने प्रज्ञावान होनेसे थोड़े ही समयमें विनयपूर्वक गुरुमहाराजके पाससे दशपूर्वकी विद्या पढ़ ली। एक दिन अपने आयुको पूर्ण हुआ समझ कर महात्मा श्री स्थूलभद्रसूरि उन दोनों शिष्योंको आचार्यपद देकर समाधिपूर्वक काल करके स्वर्गातिथि होगये। अब आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्ती, ये दोनों ही आचार्य अपने अपने गच्छ सहित पृथ्वी तल पर भव्य जीवोंको बोध करते हुए विचरते हैं। एक दिन आर्यमहागिरि महाराज अपने गच्छको अपने छोटे गुरु भ्राता आर्यसुहस्तीको सौंप कर आप जिनकल्पकी वृत्तिसे विचरने लगे। यद्यपि उस समय जिनकल्प विच्छेद होगया था तथापि वे गच्छकी निश्रायसे जिनकल्पकी तुलना करते थे। एक दिन वे दोनों ही आचार्य क्रमसे विहार करते हुवे

पाटलिपुत्र नगरमें पधारे । पाटलिपुत्र नगरमें वसुभूति नामा एक श्रेष्ठी रहता था, वह एक दिन आर्यसुहस्ती महाराजके बोधसे जीवा जीवादि तत्वको जाननेवाला श्रावक होगया । 'वसुभूति' अब अपने स्वजन संबंधियोंको भी जैनी बनाना चाहता है अत एव वह उन्हें हमेशह उपदेश करता है । मगर छिद्रवाले घड़ेके समान उनके हृद-यमें वसुभूतिके उपदेशरूप पानीका एक बिन्दु मात्र भी नहीं ठह-रता, क्योंकि जो अल्पबुद्धिवाले प्राणी होते हैं उन्हें विना धर्माचार्यके उपदेश नहीं लगता । 'वसुभूति' एक दिन आचार्य महाराजसे हाथ जोड़ कर बोला–भगवन्! मैं अपने स्वजनोंको उपदेश देता देता थक गया मगर उन्हें बोध नहीं होता अत एव कृपा करके आप ही उन्हें सीधे रास्ते पर लायें । यह सुन कर 'आर्यसुहस्ती' वसुभूतिके घर धर्मोपदेश देनेको गये और वहाँ जाकर सुधाके समान धर्मदेशना दी । उस समय दैवयोग आर्यमहागिरि महाराज भिक्षाके निमित्त वहाँ पर आ पधारे । महा तपस्वी आचार्य महाराज श्री आर्यमहागिरि-को वहाँ आया देख कर 'आर्यसुहस्ती' महाराज एकदम पाटसे नीचे उतर गये और उनके पगोंमें पड़ कर उन्हें भक्तिपूर्वक वन्दन किया । जब वहाँसे श्री आर्यमहागिरि महाराज चले गये तब 'वसु-भूति श्रेष्ठी' आर्यसुहस्ती महाराजसे बोला–भगवन्! क्या कोई आ-पसे भी बड़ा है? जो विश्ववन्द्य आपने भी इस आये हुए साधुको वन्दन किया । 'आर्यसुहस्ती' बोले–श्रेष्ठिन्! ये तो हमारे गुरु समान हैं इनके गुणोंका तो पारावार ही नहीं है, ये हमेशा प्राय उद्यानमें ही रहते हैं और घोर तपस्या करते हैं । कभी कभी इस वक्त जब भिक्षाका समय बीत जाता है तब ये गोचरीको निकलते हैं । इन महात्माओंकी तो पदरजो भी वन्दनीय है और प्रातःकाल उठ कर इन महात्मा-ओंका नाम स्मरण करनेसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं । इस प्रकार

आर्यमहागिरि महाराजकी प्रशंसा कर और वसुभूतिके सर्व स्वजनोंको बोध करके 'आर्यसुहस्ती' अपने स्थान पर आगये । 'वसुभूति' अपने स्वजनोंसे बोला कि ऐसे महात्माओंको निर्दोष आहार-पानी देनेसे महान् लाभ होता है इस लिए जब कभी इन महात्माओंको गोचरीके समय आया देखो तब इनकी निर्दोष आहार-पानीसे खूब भक्ति करनी । उन नवीन श्रावकोंने भी वसुभूतिका यह वचन स्वीकार कर लिया और जब दूसरे दिन भिक्षाके समय श्री आर्यमहागिरि महाराज वहाँ पर पधारे तब लोग देनेकी इच्छासे असूझतेको सूझता करने लगे । आर्यमहागिरि महाराजने उस अशन पानादिको अपने ज्ञानोपयोगसे अशुद्ध जान कर ग्रहण न किया और वसति (उपाश्रय) में आकर आर्यसुहस्तीको उपालंभ देने लगे कि कल तुमने गृहस्थके घर मेरा विनय किया और उनके सामने मेरी प्रशंसा की इसीसे आज घर घरमें दूषित आहार होगया, क्योंकि तुम्हारे उपदेशसे ही मेरे निमित्त आरम्भ हुआ, वरना मुझे कोई जानता भी न था । भगवन्! फिर कभी ऐसा न करूँगा यों कह कर 'आर्यसुहस्ती' आर्यमहागिरि महाराजके चरणोंमें पड़ कर माफ़ी माँगने लगे । 'आर्यमहागिरि' बड़े दयालू और विचारशील थे अत एव उन्होंने भी आर्यसुहस्तीको फिर कुछ न कहा ।

इधर 'संप्रति' राजा पाटलिपुत्र नगरसे उज्जयिनी नगरीमें गया हुआ था, वहाँ पर जीवन्त स्वामीकी प्रतिमाकी रथयात्रा थी अत एव वन्दन करनेके लिए वहाँ पर श्री आर्यमहागिरि और आर्यसुहस्ती भी आ पधारे । मगर इस वक्त पहलेसे इन दोनोंके समुदाय बहुत बढ़ गये थे इसीसे उन्हें भिन्न भिन्न उपाश्रयमें उतरना पड़ा था । भक्तिशाली और श्रद्धाशाली लोगोंके मन मयूरको जलदके समान श्री जीवन्त स्वामीका रथ नगरमें बड़ी धूमधामसे निकला । दोनों

ही आचार्य महाराज सपरिवार समस्त संघके साथ रथयात्रामें शामिल फिर रहे थे। जब नगरमें फिरता फिरता रथ राजदरवाजे पर आया तब महलमें एक वातायनके अन्दर बैठे हुवे राजा संप्रतिने रथको आते हुए देखा। रथके साथ ही साथ आचार्य सुहस्ती महाराजको देख कर राजा विचारने लगा कि इस महात्माको देख कर मुझे बड़ा ही हर्ष होता है और यह आभास होता है कि मैंने इन्हें कहीं पर देखा है। परन्तु इस वक्त याद नहीं आता कि कहाँ देखा है। इस प्रकार ईहा पोह करते हुए राजाको मूर्च्छा आ गई। राजा जब मूर्च्छित होकर जमीन पर पड़ गया तब सारा राजकुल शीतोपचार करने लगा। कोई चन्दनका विलेपन करता है, कोई पंखा लेकर पवन करता है और कोई वरासादि चुपड़ता है। राजाको ईहा पोह करते हुए मूर्च्छाके अन्दर जातिस्मृति ज्ञान उत्पन्न होगया। शीतोपचार करनेसे जब राजाकी मूर्च्छा दूर हो गई तब जातिस्मृति ज्ञानसे आर्यसुहस्ती महाराजको अपना पूर्वभव गुरु जान कर उन्हे वन्दन करनेके लिए महलसे नीचे उतरा और गुरुमहाराजको भक्तिपूर्वक जमीन पर मस्तक लगा कर वन्दन करके बोला—भगवन्! जिनेश्वरदेव प्रणित धर्मपालनका फल क्या? आर्यसुहस्ती बोले—जिनेश्वरदेव प्रणित धर्मपालनका फल स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) है। राजा बोला—और सामायिकका क्या फल?। यह पूछने पर जब श्री आर्यसुहस्ती महाराजने कहा कि राजन्! अव्यक्त सामायिकका फल राज्यादिक होता है तब विश्वाससे चुकटी बजा कर राजा बोला—भगवन्! बेशक ऐसा ही है इसमें जरा भी संदेह नहीं। राजा गुरुमहाराजको फिरसे हाथ जोड़ कर बोला—भगवन्! आप मुझे पैछानते हैं या नहीं?। यह सुन कर 'आर्यसुहस्ती' महाराज अपने श्रुतज्ञानोपयोगसे उसका पूर्वभव वृत्तान्त जान कर बोले—राजन्! हम तुम्हें अच्छी तरह जा-

नते हैं तुम अपने पूर्वभवकी कथा सुनो । एक दिन हम आर्यमहागिरि महाराजके साथ विहार करते हुए कौशांबी नगरीमें आये थे । हम दोनोंका साधु समुदाय बहुत बड़ा था अत एव एक मकानमें समावेश न होनेके कारण जुदे जुदे मकानमें उतरे । उस समय बड़ा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था, तथापि हम पर भक्तिवाले लोग आहार–पानीकी विज्ञप्ति विशेष करते थे । एक दिन हमारे साधु भिक्षाके लिए एक शेठके घरमें गये । उन साधुओंके पीछे पीछे एक रंक भिखारी भी चला गया । वहाँ पर भक्तिपूर्वक उन साधुओंको शेठने मोदकादि आहार बोराया (दिया) । यह सब काररवाई वह भिखारी देख रहा था अत एव जब वे साधु विविध प्रकारके भोजन बोर कर वहाँसे चल पड़े तब वह भिखारी भी उन साधुओंके साथ चल पड़ा और रास्तेमें आते हुए उन साधुओंसे बोला–महाराज! आपको तो बहुतसा अच्छेसे अच्छा भोजन मिलता है और मुझे तो कोई सूखे टुकड़े भी नहीं देता, माँगनेके लिए कोई घरमें भी नहीं घुसने देता । इस लिए यदि आप मुझे कुछ थोड़ासा भोजन खानेको दे देवें तो मेरा काम होजाय । आपको तो और भी बहुत मिल जायगा । साधुओंने कहा कि भाई! हम स्वाधीन नहीं हैं हम तो गुरु पराधीन हैं अत एव हम देनेके लिए असमर्थ हैं । देना न देना यह–गुरुमहाराज जानें । यह सुन कर वह बिचारा दीनात्मा भिखारी साधुओंके पीछे पीछे उपाश्रय आया और हमारे पास आकर भोजनकी याचना करने लगा । साधुओंने हमसे कहा कि भगवन्! यह दीनमूर्ति भिखारी रास्तेमें हमसे भी भोजन माँगता था और इसी लिए यह आपके पास आया है । उस वक्त हमने अपने श्रुतज्ञान बलसे जाना कि यह जीव भवान्तरमें शासनका आधारभूत होनेवाला है अत एव हमने उस भिखारीसे कहा कि भद्र! यदि तू दीक्षा ले

तो यह भोजन खानेको मिल सकता है । उस रंकने विचारा–इस वक्त भी मैं सर्व प्रकारसे दुःखी हूँ । परन्तु दीक्षा लेने पर खाने-पीनेका तो कष्ट मिट जायगा । अर्थात् दीक्षा लेनेसे खानेको तो मालमसाले मिलेंगे । इस लिए इस कष्टसे तो दीक्षा लेना ही अच्छा है । यह विचार कर उस रंकने हमारे पास दीक्षा लेकर कई दिनका भूखा होनेके कारण गोचरीमें आया हुआ मोदकादि आहार खूब खाया, ऐसा खाया कि श्वास लेने तक भी पेटमें मार्ग न रहा । उन गिजा वस्तुओंके अधिक खानेका यह परिणाम निकला कि जब उसके पेटमें वे वस्तुयें हजम न हो सकीं तो उसी दिनकी रात्रिको श्वास रूक जानेसे वह बिचारा काल कर गया । उस एक दिनके चारित्रके प्रभावसे शुभ भावपूर्वक मरने वह रंकसे साधुवेषमें काल करके 'कुणाल' के पुत्रपने तू पैदा हुआ है ।

अपना पूर्वभव वृत्तान्त सुन कर राजा हाथ जोड़ कर बोला–भगवन्! आपकी कृपासे ही मैंने यह पदवी प्राप्त की है यदि आप मुझे उस वक्त दीक्षा न देते तो न जानें मेरी क्या गति होती । आप कृपा कर मुझे कुछ आदेश करें, मैं आपका अनृण तो हो ही नहीं सकता हूँ । मेरे पूर्वजन्मवत् इस भवमें भी गुरु हैं और मैं आपका शिष्य हूँ अत एव आप मुझे धर्मपुत्र शिक्षासे अनुग्रहित करें । दयासमुद्र भगवान 'आर्यसुहस्ती' बोले–राजन्! इस भव और पर भवमें सुखसंपदाओंके देनेवाले जिनधर्मको स्वीकार करो क्योंकि मनुष्योंको शिवशर्म भी सर्वज्ञ प्रणित धर्मका स्पर्श किये विना प्राप्त नहीं हो सकता । राजा संप्रतिने गुरुमहाराजकी अनुज्ञासे यह अभिग्रह धारण कर लिया कि सर्व दोष रहित वीतराग देवको देव तरीके मानना, पंचमहाव्रतधारी साधुको गुरु तरीके और सर्वज्ञ देव प्रणित धर्मको धर्म मानना । 'संप्रति' गुरुमहाराजसे अणुव्रत, गुणव्रत और

शिक्षाव्रत धारण करके उस दिनसे परम श्रावक बन गया । 'संप्रति' अब तीन काल जिनेश्वरदेवकी पूजा करता है, साधर्मियोंके विषे बन्धु दृष्टि रख कर स्वधर्मी वात्सल्य करता है और सदा काल जीवदयामें मन लगा कर दीनात्माओंके प्रति अधिकाधिक दान देता है । संप्रतिने वैताढ्य पर्वत पर्यन्त तीन खण्डकी भूमिको जिनेश्वरदेवके मन्दिरोंसे विभूषित करा दिया । आचार्य 'आर्यसुहस्ती' महाराज अभी वहाँ पर ही थे । श्री संघने एक दिन चैत्ययात्रोत्सव किया । उस महोत्सवमें ऐसा तो मण्डप बनाया था कि मानो शक्रेन्द्रकी सभाका भी तिरस्कार करता था, उस मण्डपके अन्दर आर्यसुहस्ती महाराज समस्त संघके साथ प्रतिदिन जाया करते थे और उनके शिष्यके समान हाथ जोड़ कर उनके सन्मुख आकर राजा 'संप्रति' बैठता था, जब महोत्सव समाप्त हुआ तब श्री संघने फिर रथयात्रा निकाली । जिस वक्त रथको सजा कर रथशालासे निकाला गया उस वक्त यह आभास होता था मानो भूमि पर सूर्यनारायणका रथ आगया है और जब रथके अन्दर स्थापन की हुई भगवद्देवकी प्रतिमाका विधिज्ञ श्रावकोंसे स्नात्र हो रहा था तब ऐसा मालूम होता था कि मानो सुमेरु पर्वत पर साक्षात् जिनेश्वरदेवका स्नात्र होता है । श्रावकोंने सुगन्धि द्रव्योंसे भगवद्देवकी प्रतिमाका विधिपूर्वक विलेपन करके मालती, मोगरा, गुलाब, शतपत्रादिके पुष्पोंसे पूजन किया । उस वक्त ऐसा मालूम होता था जैसे शरदकालके बादलोंसे आच्छादित चन्द्रमाकी किरणें शोभती हैं । इस तरह विविध प्रकारसे भगवत्प्रतिमाका पूजन करके श्रावकोंने आरती उतारी और वहाँसे रथको नगरमें फिराना शुरू किया । रथके पीछे बहुतसी श्राविकायें भगवद्देवके गुणगीत गा रही हैं, आगे अनेक प्रकारके बाजे बजते जा रहे हैं और बीचमें बहुतसे श्रावक लोग जिनधर्मकी जय बोलते

हुए जा रहे हैं। इस प्रकार नगरमें फिरता हुआ रथ धीरे धीरे राज-द्वार पर आया। अपने दरवाजे पर रथको आया देख कर राजा हर्षित होकर खड़ा होगया और रथको वहाँ ही ठहरा कर रथमें रही हुई प्रभुकी प्रतिमाकी राजाने भक्तिपूर्वक पूजा की। पश्चात् अपने सामन्तोंको बुला कर गुरुमहाराजसे उन्हें सम्यक्त्व दिला कर राजा बोला—यदि तुम लोग मुझे अपना स्वामी मानते हो तो ये गुरुमहा-राज मेरे स्वामी हैं अत एव तुमने भी इन्हें अपने गुरु समझना और तुम लोग इनकी सेवाभक्ति करोगे तो मैं इससे तुम पर बहुत ही प्रसन्न रहूँगा। यों कह कर राजाने सामन्तोंको विदा किया और रथके आगे पुष्पवृष्टि करते हुवे वहाँसे रथको आगे बढ़ाया। इस प्रकार नगरमें रथयात्रा फिरा कर रथको मण्डपमें ले गये। एक दिन रात्रिके समय राजा संप्रतिको यह विचार पैदा हुआ कि अनार्य देशोंमें भी साधुओंका विहार कराऊँ, अत एव उसने एक दिन उसके स्वाधीन जो अनार्य देश थे वहाँ पर यह फ़रमान भेज दिया कि मेरे भेजे पुरुष जिस प्रकारसे कर माँगे उसी प्रकारसे देना, यह फ़रमान भेज कर संप्रतिने साधुका वेष धारण करा कर और अच्छी तरह शिक्षा देकर अपने आदमियोंको अनार्य देशोंमें भेजा। उन आदमियोंने वहाँ जाकर कहा कि अमुक अमुक बैतालीस दोषोंसे रहित वस्त्र, पात्र, आहार पानी तुम हमें बिन माँगे ही स्वयं दिया करो और इस तरह करनेसे राजा तुम पर बड़ा प्रसन्न रहेगा, अन्यथा कुपित हो जायगा। राजाको प्रसन्न करनेके लिए अनार्य लोगोंने भी वैसा ही किया, जब कुछ दिनोंमें वे देश साधु विहारके योग्य होगये तब एक दिन राजाने हाथ जोड़ कर गुरुमहाराजसे यह विज्ञप्ति की कि भगवन्! जिस तरह आर्यदेशमें साधु लोग विहार करते हैं उस तरह अनार्य देशमें क्यों नहीं करते।

गुरुमहाराज बोले—राजन्! अनार्य देशमें अज्ञानी जनोंकी वसति होनेके कारण साधुओंके ज्ञानदर्शन चारित्रमें स्खलना होनेका संभव है अत एव अनार्य देशमें साधु नहीं विचरते। राजा बोला—भगवन्! इस वक्त साधुओंको वहाँ पर विहार करा कर उन लोगोंकी चतुराई तो देखो। राजाके कहनेसे आचार्य महाराजने द्रमिलादि अनार्य देशोंमें कितने एक साधुओंको विहार कराया। जब अनार्य देशोंमें साधु लोग गये तब वहाँके रहनेवाले अनार्य मनुष्योंने उन साधुओंको देख कर जाना कि राजपुरुष आगये हैं अत एव पहले अभ्याससे साधुओंको आहार पानीकी प्रार्थना करने लगे और निर्दोष भक्त पानादि बोराने लगे। यह आश्चर्य देख कर साधुओंने पीछे आकर सर्व वृत्तान्त गुरुमहाराजसे कह सुनाया। 'गुरुमहाराज' जान गये कि अनार्य देश जो साधु विहारके योग्य किये गये हैं यह सब राजसत्तासे ही हुआ है क्योंकि अन्यथा ऐसा होना असंभव है। संप्रति राजाने पूर्वकी दरिद्रावस्थासे डर कर अपने नगरके दरवाजों पर दानशालायें खुलवा दीं और विना ही रोक टोकके वहाँ पर सबको भोजन मिलने लगा। उन भोजनशालाओंमें जो भोजन खानेवाले मनुष्योंसे बचता था उसे रसोई पकानेवाले पाचक लोग विभाग करके ले जाते थे। राजाको जब यह मालूम हुआ कि अवशिष्ट भोजन पाचक लोग ले जाते हैं तब उन्हें बुला कर राजाने कहा कि इस बचे हुए निर्दोष भोजनमेंसे तुम लोग साधुओंको बोराया करो और इसकी एवजमें हम तुम्हें द्रव्य दिया करेंगे, उससे तुम्हारा अच्छी तरह निर्वाह हो जायगा। पाचकोंने भी राजाकी आज्ञासे वैसा ही किया और साधु लोग भी उसे निर्दोष जान कर ग्रहण करने लगे। श्रमणोपासक राजाने हलवाई, बजाज तथा घी, तैल, दही बेचनेवाले दुकानदारोंको आज्ञा कर दी कि साधुओंको जो कुछ चाहिये सो तुम लोग अपनी दुका-

नदार लोग बड़ी खुशीसे साधुओंको विज्ञप्ति करके जो उन्हें चाहिये सो वस्तु बोराने लगे और दाम राजाके वहाँसे ले आते हैं। इस प्रकार जब दोषयुक्त जान कर आर्यसुहस्तीके साधु वस्तुयें ग्रहण करने लगे तब श्री 'आर्यमहागिरि' आर्यसुहस्तीसे बोले कि अनेषणीय याने सदोष जान कर भी राजाका अन्न पान क्यों ग्रहण करते हो?। 'आर्यसुहस्ती' बोले–भगवन्! यथा राजा तथा प्रजा। राजाको भक्त जान कर सब लोग बोराते हैं अपने ले लेते हैं। यह सुन कर कुपित होकर आर्यमहागिरि महाराज बोले–बस यह सब तुम्हारी माया (कपटाई) है शान्त हो तुम्हारा पाप, बस आजसे लेकर एक ही सामाचारीवालोंका हमारा तुम्हारा रास्ता जुदा होता है। यह सुन कर डरे हुए बालकके समान काँपते हुए 'आर्यसुहस्ती' आर्यमहागिरि महाराजके पगोंमें पड़ गये और हाथ जोड़ कर बोले–भगवन्! मैं अपराधी हूँ आप कृपालु इस अपराधको क्षमा करें। मैं फिर कभी ऐसा न करूँगा। 'आर्यमहागिरि महाराज बोले–भाई! इसमें तुम्हारा क्या दोष है? पहले भगवान श्री महावीर कह गये हैं कि—

मदीये शिष्यसन्ताने स्थूलभद्रमुनेः परम्।
पतत्प्रकर्षा साधुनां सामाचारी भविष्यति ॥ १ ॥

यों कह कर उनके गच्छको संभोगिक कल्प समझ कर श्री जीवन्त स्वामीकी प्रतिमाको नमस्कार करके अपने समुदायको साथ लेकर नगरीसे विहार कर गये। प्रथम जहाँ पर त्रिलोकी नाथ श्री 'महावीर स्वामी' समवसरे थे और दशार्णभद्रको बोध करनेके लिए इन्द्र महाराज अपनी ऋद्धि सहित भगवानको वन्दन करने आया था उस वक्त सूर्यास्त होते समय इन्द्र महाराजके हाथीने गोड़ा टिकाया था अत एव तबसे वह स्थान गजेन्द्र पद तीर्थके नामसे प्रसिद्ध

होगया था। इसीसे उस तीर्थको पवित्र स्थान समझ कर श्री आर्यमहागिरि महाराज वहाँ पर पधारे और वहाँ पर ही उन्होंने चतुष्प्रकारके आहारके त्यागपूर्वक अनशन कर मनोभिष्ट स्थान प्राप्त किया। इधर संप्रति राजा भी श्रावकव्रतको शुद्ध तया पाल कर देवलोक होगया और सुखोंकी परंपरायें प्राप्त करता हुआ क्रमसे सिद्धि गतिको प्राप्त होगा। एक दिन 'आर्यसुहस्ती' महाराज अन्यत्र विहार करके पुनः उज्जयिनी नगरीके बाह्योद्यानमें आकर ठहरे। वसतिकी याचना करनेके लिए दो मुनियोंको उन्होंने नगरीमें भेजा। वे दोनों मुनि सीधे 'भद्रा' शेठानीके घर गये। भद्राने भी उन्हें देख कर भक्तिपूर्वक वन्दन किया और हाथ जोड़ कर विज्ञप्ति की कि महाराज! जो कुछ आज्ञा हो सो फरमाओ, मुनि बोले—कल्याणि! हम आर्यसुहस्ती महाराजके शिष्य हैं और उन्हींके भेजे हुए हम वसतिकी याचना करने आये हैं। यह सुन कर भद्राने अपनी विशाल वाहनशाला खोल दी अत एव 'आर्यसुहस्ती' महाराज सपरिवार उस वाहनशालामें आ विराजे। एक दिन 'आर्यसुहस्ती' महाराज सन्ध्या समय नलिनीगुल्म नामा अध्ययन चितार रहे थे। उस वक्त भद्रा शेठानीका पुत्र 'अवन्तिसुकुमाल' देवाङ्गनाओंके समान रूपवाली अपनी बत्तीस स्त्रियोंके साथ अपने महलमें सातवीं मंजल पर क्रीड़ा कर रहा था। 'अवन्तिसुकुमाल' के कानोंमें गुरुमहाराजके मुखारविन्दसे निकले हुए जब नलिनीगुल्म विमानके शब्द पड़े तब वह क्रीड़ा वगैरह करना सब भूल गया और एकाग्र ध्यान लगा कर उसे सुनने लगा। नलिनीगुल्मके सुननेका अवन्तिसुकुमालको इतना चाव होगया कि वह अपने महलसे नीचे उतरा और वसतिके दरवाजे पर जाकर कान लगा कर सुनने लगा। जब अच्छी तरहसे अवन्तिसुकुमालने नलिनीगुल्म विमानका स्वरूप सुना तो उसके मनमें यह विचार पैदा हुआ

कि यह मैंने कभी पहले सुना है या कहीं देखा है? यह विचार करते हुए अवन्तिसुकुमालको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, अत एव अपना पूर्वभव जान कर गुरुमहाराजके पास जाके हाथ जोड़ कर बोला–भगवन्! मैं भद्रा श्राविकाका पुत्र हूँ और पूर्वजन्ममें मैं उसी नलिनीगुल्म विमानका मालिक देव था जिसका आप अभी पाठ कर रहे थे। आपकी कृपासे मुझे अभी जातिस्मृति ज्ञान पैदा हुआ है। जातिस्मृति ज्ञानसे ही मैंने अपने पूर्वभव संबंधि नलिनीगुल्म विमानका स्वरूप जाना है और अब मेरी वहाँ ही जानेकी इच्छा है अत एव आप कृपा कर मुझे दीक्षा दें। आचार्य महाराज बोले–भाई! लोहके चने चावने सुगम हैं और अग्नि स्पर्श करना भी सुगम है। मगर जिनोपज्ञ धर्मको निरतिचार पालना यह बड़ा दुष्कर है। क्योंकि तुम्हारा शरीर बहुत सुकुमाल है। 'अवन्तिसुकुमाल' बोला–भगवन्! इस वक्त मुझे दीक्षा तो अवश्य लेनी है। मगर हाँ चिरकाल तक पालनेके लिए असमर्थ हूँ। इस लिए मैं दीक्षा लेकर अनशनपूर्वक थोड़ा कष्ट तो धैर्यका आलम्बन लेकर सहूँगा। अवन्तिसुकुमालके मुखसे ये बातें सुन कर 'गुरुमहाराज' बोले–भद्र! यदि तुझे अवश्य दीक्षा लेनी ही है तो तू अपने स्वजनोंसे पूछ ले। 'अवन्तिसुकुमाल' ने अपनी मातासे जाकर दीक्षा लेनेके लिए पूछा। मगर उनकी जुबानसे नाही ना निकला। अवन्तिसुकुमालने वहाँ पर ही अपने सिरके केश उखाड़ कर साधुका लिङ्ग धारण कर लिया क्योंकि जब उसे नलिनीगुल्म विमानकी बातें याद आती थीं तब उसे संसार मात्र कारागारके समान देख पड़ता था। 'अवन्तिसुकुमाल' साधुका वेष धारण करके आर्यसुहस्ती महाराजके पास आया। गुरुमहाराजने 'अवन्तिसुकुमाल' को स्वयमेव साधु बना देख कर विचारा कि यह जिनधर्मसे बिलकुल विरुद्ध है अत एव उन्होंने 'अवन्तिसुकुमाल'

को विधिपूर्वक दीक्षा दी। चिरकाल तक दीक्षा कष्टको सहन करनेमें असमर्थ होकर अनशन करनेकी इच्छासे 'अवन्तिसुकुमाल' गुरुमहाराजकी आज्ञा लेकर वहाँसे अन्यत्र विहार कर गया। अवन्तिसुकुमालका जैसा नाम था वैसा ही सुकोमल उस महात्माका शरीर भी था। 'अवन्तिसुकुमाल' ऐसा तो सुखी था कि वह कभी नंगे पैर चार कदम और वाहनके विना पाव मैल भी न जाता था। मगर आज वही 'अवन्तिसुकुमाल' अपने शरीरको कुछ भी न समझ कर निर्जन भूमिमें विहार कर रहा है और रास्तेमें बहुतसे काँटे लगनेसे पगोंमेंसे लहूकी धारा बह रही है। इस प्रकार विहार करता हुआ 'अवन्तिसुकुमाल' जहाँ पर चारों तर्फ चितायें बल रही हैं और गीदड़ आदि जंगली जानवर भयानक शब्द कर रहे हैं ऐसी श्मशान भूमिमें जा पहूँचा। 'अवन्तिसुकुमाल' एक काँटेवाले वृक्षसे गुफे हुए विषम स्थानमें अपने शरीरको बुसरा कर पंच परमेष्ठी नमस्कारको मनमें धारण कर ध्यानमुद्रासे स्थिर चित्त होकर खड़ा होगया। महात्मा 'अवन्तिसुकुमाल' जिस रास्तेसे आया था उस रास्ते उसके पगोंमेंसे जो लहू टपका था उस लहूके अनुसार ही दैवयोगसे एक जम्बुकी (गीदड़ी) अपने बच्चोंको साथ लेकर वहाँ पर जा पहुँची जहाँ पर महात्मा 'अवन्तिसुकुमाल' ध्यानस्थ खड़े हुवे थे। अवन्तिसुकुमालके पगोंको लहूसे रक्त देख कर उस जम्बकीने उन्हें खाना शुरू कर दिया। जम्बुकी उस महात्माके पगकी चमड़ी, मांस, मेद और हड्डियाँ चटक चटक तोड़ तोड़ कर खाने लगी। मगर वह अचल मनवाला महात्मा निश्चल चित्तसे तथैव खड़ा रहा। रात्रिके पहले ही पहरमें उस जम्बुकीने अवन्तिसुकुमालका एक पग खा लिया और उसके साथ ही दूसरा उसके बच्चोंने खा लिया। इसी प्रकार दूसरे पहरमें उसके दोनों ऊरु (जंघायें) भक्षण कर लीं। वह महा-

त्मा उस वक्त उस जम्बुकीके ऊपर दया रख कर यही विचारता था कि यह बिचारी मेरे शरीरको नहीं खाती किन्तु मेरे अशुभ कर्मोंको खा रही है और यदि मेरा शरीर भी खानेसे दूसरे जीवकी तृप्ति होती हो तो कुछ परवा नहीं क्योंकि यह शरीर और किसी काममें आनेवाला नहीं है ।

इसने एक दिन न एक दिन तो अवश्य मिट्टीमें मिल जाना है अत एव इस बिचारीको खाकर ही तृप्त होने दो । इस प्रकार विचार करते हुए जब अवन्तिसुकुमालके पेटको खाना शुरू किया तब वह महा सात्विक शिरोमणि निश्चल भावयुक्त काल करके उसी नलिनीगुल्म विमानमें देवपने जा पैदा हुआ जिसका वरनन सुन कर संसारसे विरक्त हुआ था । परम पवित्र महात्मा अवन्तिसुकुमालके शरीरकी महिमा देवताओंने आकर की । प्रातःकाल होने पर अवन्तिसुकुमालकी स्त्रियें गुरुमहाराजके पास आईं और गुरुमहाराजको वन्दन कर हाथ जोड़ कर पूछने लगीं कि भगवन्! हमारे पति आपके पास आये थे वे अब कहाँ पर हैं ? । अपने ज्ञानोपयोगसे जान कर आर्यसुहस्ती महाराजने अवन्तिसुकुमालका सर्व वृत्तान्त कह सुनाया । अपने पतिका आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुन कर अवन्तिसुकुमालकी पत्नियाँ शीघ्र ही अपने महलमें गईं और सर्व वृत्तान्त उन्होंने अपनी सासु 'भद्रा' से जा सुनाया । 'अवन्तिसुकुमाल' की माता 'भद्रा' अपने पुत्रका वृत्तान्त सुन कर शीघ्र ही अवन्तिसुकुमालकी पत्नियोंके साथ उस भयानक श्मशान भूमिमें गई जहाँ पर महात्मा अवन्तिसुकुमालने ध्यानस्थ होकर दुस्सह्य कष्ट सहन करके मन इच्छित स्थानको प्राप्त किया था । अपने पुत्रके कलेवरको गीदड़ोंसे खाया हुआ देख कर भद्राने ऐसा रुदन किया मानो उसे विलाप करती देख दिशायें भी रोने लगीं । 'भद्रा' अपने पुत्रके शोक

समुद्रमें मग्न होकर विलाप करती है कि हे पुत्र! तू एकदम ही इतना निर्मोही क्यों होगया? जो हमें विना पूछे ही दीक्षा लेकर इस भयानक भूमिमें ध्यान लगा कर शरीरको त्याग दिया और दीक्षा लेकर मुझ निर्भाग्यनीका घर एक दफा भी अपने चरणोंसे पवित्र न किया। पुत्र! अब वह रात्रि कौनसी होगी जिस रात्रिको हमें तू स्वप्नमें दर्शन देकर जीवित करेगा? । इस प्रकार पुत्रके वियोगसे विलाप करती हुई भद्राने शिप्रा नदीके तट पर अवन्तिसुकुमालके शरीरका अग्नि संस्कार किया और अवन्तिसुकुमालकी स्त्रियोंने भी अपने पतिके वियोगजन्य अश्रुपातसे मुखमण्डलको धोते हुए सुहागनपनेके चिन्ह अपने शरीरसे उतार डाले । भद्राने अब इस दुःखसमुद्रको तरनेके लिए नावके समान दीक्षा लेनेकी ठान ली । भद्राने घर पर जाकर अवन्तिसुकुमालकी जो स्त्री गर्भवती थी उसे छोड़के अन्य स्त्रियोंके साथ गुरुमहाराजके पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली । अवन्तिसुकुमालकी गर्भवती स्त्रीने थोड़े दिन पीछे एक पुत्ररत्नको जन्म दिया । उस अवन्तिसुकुमालके पुत्रने बड़ा होकर अवन्तिसुकुमालकी स्वर्गवास स्थान भूमिमें अर्थात् जहाँ पर ध्यान मुद्रामें स्थिर चित्त होकर अवन्तिसुकुमालने नलिनीगुल्म विमानको प्राप्त किया था उस जगहमें एक बड़ा भारी जिनेश्वरदेवका मन्दिर बनवाया । वह जिनमन्दिर आज तक भी अवन्तिदेशकी शोभाको बढ़ा रहा है। भगवान आर्यसुहस्ती भी योग्य शिष्यको अपना गच्छ सौंप कर अनशनपूर्वक देहत्याग करके स्वर्गातिथि होगये ।

॥ बाईसवाँ परिच्छेद ॥

वज्रर्षि ।

इधर अवंती नामा देशमें अपनी ऋद्धिसे देवलोकको भी जीतनेवाला तुम्बवन नामका एक गाँव था । वहाँ पर रूपसे कामदेवके समान और धनसे धनदके समान एक धनगिरि नामका श्रावक रहता था । मातापिता धर्मी होनेसे वह भी बचपनसे ही धर्मपरायण था, वह यह भी जानता था कि ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेसे स्वर्ग तथा अपवर्गके सुख मिलते हैं अत एव वह बचपनसे ही जितेन्द्रिय था । युवावस्थाके प्राप्त होने पर उसके मातापिता जिन जिन साहूकारोंसे उसके लिए कन्याकी प्रार्थना करते थे उन्हींके घर जा जा कर धनगिरि कह आता था कि भाई ! मैंने थोड़े ही दिनोंमें दीक्षा लेनी है यदि आप कन्या देवें तो सोच विचार कर दें, क्योंकि मैं तुम्हारी लड़कीके प्रतिबंधसे इस असार संसारमें न रहूँगा । ऐसा होने पर भी उसी गाँवमें रहनेवाले धनपाल शेठकी सुनंदा नामकी कन्याने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि विवाह कराना तो धनगिरिके साथ ही कराना अन्यथा नहीं । धनपाल शेठने भी अपनी लड़कीकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुन कर दीक्षा लेनेकी इच्छा करनेवाले उसी धन-गिरिके साथ विवाह करा दिया । सुनंदाके भाई आर्यशमितने श्री सिंहगिरि आचार्यके पास पहले ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी । इधर धनगिरिको संसारसे विरक्त हो कर भी विषयजन्य सुखका अनुभव

करते हुवे कुछ काल व्यतीत होगया । इस समय श्री अष्टापदगिरि पर श्री गौतम स्वामी यात्राके लिए पधारे थे, इतनेमें दो देवता भी वहाँ आये । उनमेंसे एक मिथ्यादृष्टि और एक सम्यक् दृष्टि था । श्री गौतम स्वामी यात्रा करके लौटते हुवे उन देवों पर अनुग्रह करके धर्मोपदेश देने लगे । देशनामें प्रसंगसे वरनन यह चल रहा था कि प्राय तप जप करनेसे यतिओंका याने साधुओंका शरीर पतला होता है । यह वचन सुन कर वैश्रमणके समान ऋद्धिवाला मिथ्यादृष्टि देव मनमें बड़ा विस्मित हुआ, क्योंकि खुद भगवान गौतम स्वामीका ही शरीर कुछ स्थूल था, परन्तु उसके आश्चर्यका कारण भगवान श्री गौतम स्वामी शीघ्र ही समझ गये, तब उन्होंने पुंडरीक नामका अध्ययन सुनाया । उस अध्ययनके सुननेसे पूर्वोक्त देवको समकितकी प्राप्ति हुई । देशना समाप्त होने पर वे दोनों ही देवता श्री गणधर भगवानको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके और अपने विमान पर बैठ व्योम मार्गसे स्वर्गमें चले गये । उनमेंसे जिसको समकित प्राप्त हुआ था उसका देव संबंधि आयु पूर्ण होनेसे धनगिरिकी भार्या सुनंदाकी कुक्षिमें अवतरण हुआ । एक दिन अपनी पत्नीको गर्भवती देख कर धनगिरि उससे बोला कि भद्रे! अब तुझे यह गर्भ ही आधारभूत हो, मैं संसारमें रहना नहीं चाहता, बस तेरा और तेरे गर्भका कल्याण हो, मैं जाता हूँ । इतना कह कर स्वच्छ बुद्धिवाला 'धनगिरि' जैसे भाड़के मकानको मनुष्य छोड़ देता है वैसे ही गर्भवती अपनी पत्नीको छोड़ चला । श्री सिंहगिरि आचार्यके पास जाकर धनगिरिने दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा ग्रहण करके निज शरीर पर भी निस्पृह होकर बाईस परिषहोंको सहन करता हुआ घोर तपस्या करने लगा और विनयादि गुणोंसे गुरुमहाराजको प्रसन्न करता हुआ विद्याभ्यास करने लगा । बुद्धि तीक्ष्ण होनेसे धनगिरिने थोड़े ही दिनोंमें

जैसे कुवेमेंसे जल ग्रहण कर लेते हैं वैसे ही गुरुमहाराजरूप कुवेसे विद्यारूप जलको ग्रहण कर लिया। जनोंको आनन्द देनेवाले चन्द्रमाको जैसे पूर्व दिशा जन्म देती है वैसे ही इधर धनगिरिकी पत्नी सुनंदाने नव मास परिपूर्ण होने पर पुत्ररत्नको जन्म दिया। उस वक्त सुनंदाका सूति कर्म पासकी पड़ोसन स्त्रियोंने ही किया और सूति कर्म करते हुवे उस बालकको हाथोंमें लेकर उदासीनतापूर्वक यह बोलीं–हे पुत्र! यदि तेरा पिता दीक्षा न ग्रहण करता तो इस वक्त तेरा जन्मोत्सव बड़ी धूमधामसे करता। यह वाक्य सुन कर वह बालक लघु कर्मी होनेसे विचार करता है–क्या मेरा पिता दीक्षा ले गया! यह विचार करते करते उस बालकको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उस वक्त वह बालक भी अबाल बुद्धिवाला संसारकी असारताको जानता हुआ विचार करता है–यदि पिता संसारसे कूच कर गये तो मुझे संसारमें रह कर क्या काम है? परन्तु माताका स्नेह मेरे ऊपरसे दूर होवे ऐसा उपाय करना जरुरी है। यह विचार करते हुए उस बालकने एक बड़ा सुगम उपाय सोचा। वह उपाय यह था कि माता उसको जिस वक्त गोदमें लेती थी उसी वक्त उच्च स्वरसे रोने लग जाता था। माता उसे खुश करनेके लिए बहुत ही मीठे मीठे वचन बोलती और अनेक प्रकारकी चेष्टायें करती परन्तु वह बालक जरा भी रोनेसे बंद नहीं होता बल्कि ज्यादह रोने लगता। इस तरहसे उसको रोते हुवे ६ मास व्यतीत होगये और सुनंदा उस बालकसे बड़ी ही निर्वेदको प्राप्त हुई याने दुःखित हो गई। इधरसे श्री सिंहगिरि आचार्य महाराज श्री आर्यशमित तथा श्री धनगिरि आदि शिष्योंके साथ उसी गाँवमें आ पधारे। एक दिन गोचरीके लिए श्री आर्यशमित और श्री धनगिरि जाने लगे उस समय शुभ सूचक शकुन देख कर गुरुमहाराज कहने लगे कि आज-

तुमको बड़ा भारी लाभ होनेवाला है अत एव आज गोचरीमें सचित अथवा अचित जैसा द्रव्य मिले वैसा ही हमारी आज्ञासे ले आना। शिष्य भी गुरुमहाराजके वचनको सविनय स्वीकार कर गाँवके प्रति चल पड़े। दैवयोगसे प्रथम सुनंदाके ही घर पहुँचे। श्री धनगिरिको देख कर पासकी स्त्रियां सुनंदासे बोलीं कि सुनंदे! यह बालक तुझे बहुत तङ्ग करता है अत एव ये धनगिरि इसके पिता आये हैं तू इनको समर्पण कर दे। सुनंदाका पहले ही बालकके रोनेसे चित्त खिन्न हो रहा था, अब विचार करती है कि ये साधु हुवे हुवे हैं बालकको लेकर कहाँ जाते हैं देखूँ तो सही। यह विचार कर उत्साह रहित सुनंदा उस वक्त बच्चेको गोदमें लेकर श्री धनगिरिको कहती है कि यह तुम्हारी धरोहर मुझसे नहीं सँभाली जाती, आज तक मैंने बड़े कष्टसे इस बालकका पालन किया है परन्तु रात-दिन रुदन करनेसे बंद नहीं होता, मुझे बड़े ही नाच नचाता है। आपने मुझे तो त्याग ही दिया परन्तु इस अपने पुत्रका तो रहम करो और अपने पास ले जाओ अब यह मुझसे नहीं रक्खा जाता। सुनंदाके इस कथनको सुन कर श्री धनगिरि मुस्करा कर बोले कि भद्रे! ऐसा करने पर तुझे बहुत पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस तरहसे श्री धनगिरिजीके वचनोंको सुन कर भी सुनंदा पूर्व प्रतिज्ञा पर ही दृढ रही। तब श्री धनगिरि बोले-यदि ऐसा ही करना चाहती है तो याद रखना फिर हमसे तू इस बालकको न पायगी, ये सब लोग इस बातमें साक्षी हैं। इस तरह सब लोगोंके समक्ष सुनंदाने अपने नंदको श्री धनगिरिको समर्पित कर दिया। बालक भी श्री धनगिरिके पास जाते ही रोनेसे चुप होगया। अब श्री धनगिरिजी उस बालकको झोलीमें रख कर श्री आर्यशमितके साथ ही गुरुमहाराजके पास आ गये। उस समय गुरुमहाराज धनगिरिका हाथ झोलीके भारसे नमा

हुआ देख कर स्वयमेव उठ कर बोले कि धनगिरे! झोलीके भारसे तेरी भुजा नमी हुई है ला झोली मुझे दे। इस तरहसे कह कर गुरुमहाराजने झोली अपने हाथमें ले ली और देदीप्यमान तेजोमय उस बालकरत्नको देख कर आचार्य महाराजने बड़े आनन्दयुत अपने कर कमलोंसे उठा लिया। उसका अति भार देख कर कहने लगे कि अहो! यह बालक तो पुरुषरूप वज्रसा मालूम होता है, यों कह कर आचार्य महाराजने श्रुतज्ञानमें उपयोग दिया और जाना कि यह बालक प्रवचनका आधारभूत होगा अत एव इस पुरुषरत्नका यत्नसे रक्षण होना चाहिये। यह विचार कर आचार्य महाराजने उस बालकको साध्वीके सुपूर्द कर दिया, क्योंकि वहाँ स्त्रियोंका आना जाना बहुत रहता था और बालकका पालन पोषन भी प्राय भली भांतिसे स्त्रियोंसे ही हो सकता है। साध्वियां भी उस बालकको शय्यातरके घर लिंवा ले गई। शय्यातर घरवाले भी उस बालकका वृत्तान्त सुन कर तथा उसे अवलोकन करके अत्यंत हर्षको प्राप्त हुवे और उसका पालन पोषन करनेके लिए बड़ी खुशीसे रख लिया। वज्रके समान सार देख कर गुरुमहाराजने उसका नाम भी वज्र ही रक्खा। अब वज्र कुमारकी सारसँभाल अपने पुत्रोंसे भी अधिक करती हुई शय्यातर स्त्रियां अतीव खुशी होती हैं और जैसे हँसका शिशु सरोवरमें एक कमलसे दूसरे कमल पर बैठता है वैसे ही वज्रकुमार एक स्त्रीकी गोदसे दूसरीकी और दूसरीसे तीसरीकी गोदमें बैठ कर उनके मनको अतीव प्रसन्न करता है। जातिस्मरण ज्ञानवान् विवेकी वज्रकुमार बालक होने पर भी चपलतासे रहित है और अशन पानादि भी प्रासुक ही करता है। लघुनीति तथा गुरुनीतिकी जब शंका होती है तब संज्ञासे उनको चिता देता है इससे उन स्त्रियोंको अत्यंत प्रमोदके देनेवाला होता जाता है। इस तरहसे वज्रकुमार वहाँ पर नन्दन वनमें कल्पवृक्षके अंकूरके समान

बढ़ता हुआ रूपलावण्य प्राप्त करता हुआ सब जनोंको आनन्द देता है। इधरसे रूपलावण्य संपन्न वज्रकुमारको देख कर सुनंदा भी पुत्रके मोहसे वहाँ आकर शय्यातर स्त्रियोंसे उसकी याचना करती है और कहती है कि यह मेरा लड़का है इस लिए इसको मुझे दे दो। वे श्राविकायें सुनंदाके वचन सुन कर बोलीं कि हमें मालूम नहीं है कि तेरा पुत्र जननीका संबंध है या नहीं, यह तो गुरुमहाराजकी धरोहर है इस रत्नको तू कैसे पा सकती है? बस खबरदार जो इस लड़केको हाथ लगाया तो हमसे बुरा नहीं। दूर ही खड़ी होकर प्यार कर ले।

इस तरहसे तिरस्कारकी पात्र होती हुई दीन वदना सुनंदा उन स्त्रियोंकी खुशामद करने लगी और पुत्रके स्नेहसे विह्वल हुई हुई वज्रकुमारको गोदमें लेकर खिलाने लगी। परन्तु घर ले जानेके लिए असमर्थ हुई, इसी तरह हमेशह आकर खिलाती है। अब इधर आभीर देशमें अचलपुर नगरके समीप दो नदियें कन्ना और पूर्णा नामकी बहती हैं उन दोनों नदियोंके बीच ब्रह्मद्वीप नामक एक द्वीप है, उस द्वीपमें पाँचसौ तापस रहते हैं। उन पाँचसौ तापसोंमें एक तापस किसी एक औषधीका पैरोंपर लेप लगा कर नगरमें भोजन वगैरह लेनेके लिए आता है और श्रावक लोगोंसे यह कहता है कि तुम्हारे दर्शनमें कोई भी हमसा प्रभावी नहीं। यों कह कर जैनियोंकी हँसी करता है और अपने भक्तोंमें अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाता है। उस समय श्री वज्र स्वामीके मामा श्री आर्यशमिताचार्य वहाँ पर आ पधारे। वहाँके श्रावकोंने आचार्य महाराजसे पूर्वोक्त तापसका वृतान्त सब कह सुनाया। आचार्य महाराज भी अपने श्रुतज्ञान बलसे जान कर बोले कि भाई! इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है यह जो जल मार्गसे नित्य आता है यह कोई इसके तपकी शक्ति नहीं परन्तु किसी औषधीके प्रयोगसे आता जाता है। यदि प्रत्यय करना हो तो तुम उसको

भोजनके लिए निमंत्रण करो और जब वह तुम्हारे घर पर आवे तब उसके पगोंको गरम पानीसे मशल कर धो डालना और उसकी पादुकायें भी धो देना। फिर तुमको मालूम हो जायगा कि यह इसके तपकी शक्ति है या पाखंड करके लोगोंको ठगता है। गुरुमहाराजसे यह सुन कर एक श्रावकने वैसा ही किया। भोजनकी सामग्री तैयार होने पर तापसको बुलवाया गया और वह भी बड़ी धूमधामके साथ श्रावकोंके घर भोजन करनेके लिए आया। वह जिस वक्त दरवाजे पर आया उस वक्त एक श्रावक भक्ति नाटक दिखलाता हुआ बोला कि भगवन्! आप महात्माओंके चरण कमल धोकर मैं कृतार्थ होना चाहता हूँ क्योंकि आपसे महात्माओंके चरणकमलोंका विना पुण्यके स्पर्श भी नहीं हो सकता। अत एव मुझ पर अनुग्रह करके यह लाभ दो। यह कह कर उस श्रावकने तापसके मना करने पर भी गरम पानीसे उसके पाँव खूब रगड़ कर धो डाले और उसकी पादुकायें भी धो डालीं। ऐसी धोई कि जिससे लेपका लेश तक भी न रहा। पश्चात् उसकी भोजनादिसे खूब खातिर तवज्जय की, परन्तु उसने अपनी विगोपनाकी शंकासे उन भोजनादि खाद्य वस्तुओंका कुछ भी स्वाद न पाया। इस तरह जब वह तापस भोजन करके पीछे जाने लगा तब कितने एक लोग कुतूहल देखनेके लिए और कितने एक उस बातकी जाँच करनेके लिए उसके साथ नदी तक आये। नदी पर आकर वह तापस विचार करता है कि थोड़ा घना तो लेप पादुकाओंमें रहा ही होगा। यह सोच कर वह अलीक साहसी तापस झट नदीमें घूस गया और घूस जाने पर अच्छी तरह गोते खाने लगा। इस तरहसे उस तापसको पानीमें डूबता हुआ देख कर नगरके सब लोग कहने लगे कि अरे! इस मायावी तापसने आज तक हमको खोटे प्रपंचसे ही ठगा। यों कह कर सब लोग तालियां बजाने लगे।

इतनेमें ही आचार्य महाराज भी वहाँ पर आ पहूँचे और जैनदर्शनका प्रभाव दिखानेके लिये वासक्षेपकी चुकटी नदीमें डाल कर नदीका नाम लेकर यों बोले कि हे पूर्णे! हम परली पार जाना चाहते हैं । बस आचार्य महाराजके इतना कहते ही उस नदीके दोनों तट परस्पर मिल गये और आचार्य महाराज सपरिवार नदीके उस किनारे चले गये । उस समय जैनदर्शनकी बड़ी प्रभावना हुई । आचार्य महाराजका यह चमत्कार देख कर उन पाँचसौ तापसोंने जैन दीक्षा उन्ही आचार्योंके पास ग्रहण की । उस वक्तसे उन ब्रह्मद्वीपवासी साधुओंसे ब्रह्म तापसी शाखा निकली । इधर वज्रकुमारको वहाँ पर पलते हुवे ३ वर्ष होगये और सुनंदा भी यह विचार करती है कि यदि धनगिरिजी आवें तो मैं अपने लड़केको लूँ । सुनंदा यह विचार करती ही थी इधरसे श्री धनगिरि भी गुरुमहाराजके साथ क्रमसे विहार करते हुवे वहाँ ही आ गये । सुनंदा उनका आना सुन कर मनमें हर्षित होती हुई उनके पास गई और उनसे उसने उस बालककी याचना की । उस वक्त गुरुमहाराजने भी यह उत्तर दिया कि भद्रे! इस बालकको तो प्रथम तू हमको दे चुकी है अब तू इसके लेनेके लिए असमर्थ है और नाहीं हम इसको देंगे । इस लिये तेरी प्रार्थना ही व्यर्थ है । इस तरहसे उनका वादाविवाद होने पर कुछ निर्णय नहीं हुआ । नगरके लोग बोले कि भाई! इनका इन्साफ तो राजा ही कर सकेगा । यह कह कर सब लोग सुनंदा सहित राजसभामें गये इधरसे गुरुमहाराज भी श्री संघके साथ राजसभामें गये । राजाने सुनंदाको अपने वाम तर्फ और श्री संघ सहित आचार्य महाराजको दक्षिण तर्फ आदरपूर्वक बैठाया और उनका वृत्तान्त सुना । वृत्तान्त सुन कर राजा बोला कि एक तर्फ तो धनगिरि बैठ जावें और दूसरी तर्फ सुनंदा ।

बालकको बीचमें रक्खो और क्रमसे बुलाओ जिसके बुलानेसे जिसकी तर्फ जावे वही इसका मालिक। राजाका कहा हुआ यह न्याय दोनों ही पक्षोंको मंजूर हो गया और राजासे पूछा गया कि प्रथम कौन बुलावे। उस वक्त नगरके लोग कहने लगे कि हुजूर प्रथम माताका हक है और दूसरे यह अबला है इस लिये पहले माताकी ही ओरसे आह्वान होना चाहिये। यह बात राजाने भी मंजूर कर ली और वज्रकुमारको सभामें बैठा कर सुनंदाको बुलानेकी आज्ञा की गई। सुनंदा भी उस वक्त अनेक प्रकारके बच्चोंके खेलनेके खिलौने तथा विविध प्रकारकी खाद्य वस्तुयें लेकर अपने पुत्रके सामने गई और उन वस्तुओंको आगे रख कर यों कहने लगी—हे पुत्र! यह हाथी तेरे लिए है और यह घोड़ा भी तेरे लिए है। यह रथ है, यह ऊंट है और ये लड्डु, नौरंगी, संतरे, द्राक्ष आदि वस्तुयें ले ग्रहण कर। इस तरह कुछ दूर खड़ी होकर सुनंदा बड़े ही मीठे मीठे वचनोंसे बुलाती है। पुत्रको न आता देख कर कहती है—हे पुत्र! मुझे तो तेरा ही आलंबन है, तू ही मेरा देव, तू ही मेरी गति, तू ही मेरी मति और मुझ अनाथिनीका जीवित भी तू ही है। अत एव हे वत्स! सब लोगोंके देखते हुवे मुझ अभागिनी माताको क्यों तिरस्कृत करता है। सुनंदा इस तरह अनेक प्रकारके मधुर वचनोंसे और लोभ देकर बुलाती रही परन्तु वज्रकुमार वज्र हृदय होगया और एक कदम भी माताकी तर्फ नहीं गया। वह यह भी जानता था कि माताके उपकारका अनृणी सात भव तक भी मनुष्य नहीं हो सकता तथापि वह यह विचार करता था कि माताको बेशक इस वक्त दुःख होगा परन्तु मेरे दीक्षा लेने पर माता भी दीक्षा ग्रहण कर लेगी इस लिए यह थोड़ासा दुःख इसको सुखके लिए हो जायगा जैसे कि शास्त्रमें भी कहा है—

तैलाभ्यंगे रणच्छेदे कन्यायामरणे तथा ।
आपात मात्रतो दुःखं सपश्चात्सुखमेधते ॥ १ ॥

यह विचार कर वज्रकुमार माताके समीप नहीं गया, इतनेमें ही राजाने हुक्म किया कि सुनंदे! तू बहुत दफ़ा बुला चुकी परन्तु यह बालक तेरी ओर देखता तक भी नहीं अत एव अब तू दूर होजा अब धनगिरि बुलायगा । राजाकी आज्ञासे निरानंदा सुनंदा दूर हो गई और धनगिरिजीको बुलानेकी आज्ञा हुई । श्री धनगिरिजी भी सामने होकर और रजोहरण वज्रकुमारकी ओर रख कर मिताक्षरोंमें बोले कि वत्स यदि तेरी दीक्षा ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो मेरा यह धर्मध्वज याने रजोहरण ग्रहण कर ले । श्री धनगिरिका यह वचन सुन कर वज्रकुमार हाथीके बच्चेके समान दोनों हाथ उठा कर श्री धनगिरिके सन्मुख दौड़ा और पास जाकर रजोहरण उठा कर अपने पिताश्री धनगिरिकी गोदमें जा बैठा । यह दृश्य देख कर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ । राजाने यह न्याय करके सभा विसर्जन की । सब लोग अपने अपने स्थान पर चले गये, गुरुमहाराज भी वज्रको साथ लेकर अपने स्थान पर चले गये । इधर निराश हुई हुई सुनंदा अपने घर जाकर सूर्य अस्त होने पर मुरझाई हुई कमलिनीके समान हाथ पर मुँह रख कर शोकातुर होकर यह विचार करती है कि मेरे भाईने भी दीक्षा ग्रहण कर ली, पतिने भी दीक्षा ग्रहण कर ली और प्राणोंसे भी प्यारा मेरा पुत्र भी दीक्षा ग्रहण कर लेगा । अब मुझे इस असार संसारमें कुछ भी आधार नहीं, बस अब तो मुझे भी दीक्षा ही लेनी कल्याणकारी है । यह विचार कर सुनंदाने उन्हीं आचार्य महाराजके पास जाकर दीक्षा अंगीकार कर ली । इधर गुरुमहाराज वज्रकुमारको प्रव्रजित करके साध्वियोंके उपाश्रयमें छोड़ कर उनकी सारसंभाल करनेके लिए उनको शिक्षा दे आप अन्यत्र

विहार कर गये । इस वक्त वज्रर्षि ३ वर्षके थे अत एव विहार करनेमें असमर्थ थे, इस लिए उनको वहाँ ही छोड़ना पड़ा । उपाश्रयमें जब साध्वियाँ पढ़ती हैं तब श्री वज्रर्षि सुन सुन कर याद कर लेते हैं । इस तरहसे वहाँ रहे हुवेने ग्यारह अंगकी विद्या पढ़ ली परन्तु यह बात किसीको भी मालूम न पड़ी । जिस वक्त वज्रर्षि आठ वर्षके हुवे उस वक्त गुरुमहाराज वहाँ आकर उन्हें अपने उपाश्रय लेगये । अब श्री वज्रर्षि सानन्द गुरुमहाराजकी सेवामें रहते हैं । एक दिन आचार्य महाराजने वहाँसे अवन्तीकी ओर विहार किया, पर रास्तेमें जाते हुवे वृष्टि होने लगी । उस वक्त गुरुमहाराज अपकायाकी विराधनाके भयसे आसन्नस्थ एक यक्षके मन्दिरमें सपरिवार खड़े होगये । उस समय श्री वज्रर्षिके पूर्वभवके मित्र जृम्भक जातिके देवताओंने श्री वज्रर्षिके सत्वकी परिक्षा करनेके लिए अपनी देव शक्तिसे वणिक रूप करके कहीं बैल, कहीं घोड़े, कहीं ऊंट, कहीं गाडी और कहीं विक्रेय वस्तुओंकी गूँण, ये सब वस्तुयें श्रेणि बद्ध लगा कर तथा तंबू वगैरह ठीक जमा कर रसोई तैयार कराई । वृष्टिबंद होने पर गुरुमहाराजको भी गोचरीके लिए निमंत्रण किया । गुरुमहाराजने भी वर्षाबंद हुई समझ कर श्री वज्रर्षिको भिक्षाके लिए आज्ञा दी और दूसरा साधु साथ भेजा । वज्रर्षि गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर दूसरे साधुको साथ लेकर और आवश्यिकी कह कर चल पड़े । परन्तु रास्तेमें त्रसरेणु सदृश तुषार पड़ता हुआ देखके वज्रर्षि पीछे चले आये क्योंकि वर्षा अथवा तुषार पड़ते समय जैनमुनि गमनागमन नहीं कर सकते । उस वक्त देवता लोगोंने अपनी शक्तिसे तुषार पड़ता हुआ बंद कर पुनः प्रार्थना की, वज्रर्षि भी सर्वथा अपकायका अभाव देख कर उनके अत्याग्रहसे चल पड़े । अब वज्रर्षि क्रमसे उन कृत्रिम श्रावकोंके स्थान पर पहुँचे । गोचरी वोहोरते

समय श्री वज्रर्षिने द्रव्य क्षेत्र काल भावमें उपयोग दिया और विचार करने लगे कि यह कुष्मांड पाक (पेठा पाक) द्रव्य और यह उज्जयिनी क्षेत्र जो कि स्वभावसे ही कर्कष है और प्रथम वर्षामें इस द्रव्यकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। दाता लोग भी अनिमेष देख पड़ते हैं अत एव निश्चय यह देव द्रव्य है, सो तो साधुओंको अल्पनीय है। यह विचार कर श्री वज्रस्वामी पीछे फिर गये और भिक्षा ग्रहण न की।

श्री वज्रस्वामीकी यह दक्षता देख कर वे पूर्वभवके मित्र देवता बड़े खुश हुवे और अपना स्वाभाविक रूप कर प्रत्यक्ष होकरके यों बोले कि हम आपके प्राग्भवके मित्र हैं, आपको देखनेके लिए आये हैं और आप हमारे अभी भी मित्र ही हैं। यह कह कर उनके सत्वसे संतुष्ट होकर उन देवताओंने उन्हें वैक्रियलब्धि नामक विद्या दी। इसी तरह एक दिन जेठके महीनेमें श्री वज्रस्वामी विहार करके कहीं जा रहे थे। उन्हीं देवताओंने पूर्ववत् वणिक् रूप धारण करके घेवर बोरानेकी विज्ञप्ति की। श्री वज्रस्वामी भी उनके आग्रहसे गये तो सही परन्तु पूर्ववत् उपयोगसे देव पिण्ड समझ कर ग्रहण न किया। देवताओंने भी सन्तुष्ट हो अपने पूर्वजन्मके मित्र श्री वज्रस्वामीको आकाश गामिनी विद्या दी। पश्चात् वज्रर्षिको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर देवता अपने अपने स्थान पर चले गये। इस तरहसे श्री वज्रस्वामि बालावस्थामें भी ग्यारह अंगकी विद्या तथा पूर्वभव मित्र देवताओंकी दई हुई वैक्रिय और आकाश गामिनी विद्याओंसे संपन्न हैं, मगर बाल्यावस्थावाली चेष्टायें उनमें बिलकुल नहीं। योग्य भी ऐसा ही था क्योंकि ओछा ही कुम्भ छलकता है परन्तु संपूर्ण भरा हुआ कभी नहीं। एवं श्री वज्रस्वामी गुरुमहाराजके चित्तको भक्तिसे आनन्दित करते हुवे गच्छमें

रहते हैं । वृद्ध साधु उनको घोकता हुआ न देख कर जिस वक्त पढ़नेके लिए कहते हैं उस वक्त इन वृद्धोंकी आज्ञा भंग न हो यह समझ कर वे गुणमुणाट करने लग जाते हैं । जिस वक्त आचार्य महाराज साधुओंको वाँचना देते हैं । उस वक्त चुपचाप पास बैठ कर दत्त चित्त हो कर सुनते हैं और अनायासपने ही उसको याद कर लेते हैं । एक दिन मध्यानके समय साधु गोचरीके लिए—याने भिक्षाके लिए गये हुवे थे और आचार्य महाराज भी दिशा चले गये । अब वसतिमें केवल वज्रस्वामी ही रह गये । उस वक्त बाल्यावस्थावाले श्री वज्रस्वामिने साधुओंके वीटिये उठा कर मंडली बद्ध स्थापन किये, याने उन वीटियोंको साधुओंकी कल्पना कर और उनके बीचमें स्वयं आसनपर बैठ कर आचार्य महाराजके सदृश एकादशाङ्गकी वाँचना प्रारंभ कर दी । इधरसे आचार्य महाराज दिशा जा कर आये और दूरसे ही आते हुवे मेघके समान ध्वनि सुन कर विचारमें पड़ गये कि क्या साधु गोचरीसे इतने जल्दी आगये? कुछ देर दरवाजे पर ठैर कर गौरपूर्वक सुना । वज्रस्वामिकी ध्वनि पिछान कर आचार्य महाराज साश्चर्य—अहो यह तो बालर्षि वज्र है, एकादशाङ्गकी वाँचना दे रहा है क्या इसने इतनी विद्या गर्भमें पढ़ी होगी? । अहो! इस बालर्षिकी धैर्यता, वृद्धोंके पढ़ाने पर भी अपनी शक्तिको प्रकाशित न की । इस तरहसे आचार्य महाराजने विचार करके सोचा कि यदि मैं इस वक्त सहसा अन्दर जाऊँगा तो यह सरमा जायगा, इस लिए वे उच्च स्वरसे नैषेधि की कह कर उपाश्रयमें प्रवेश कर गये । श्री वज्रस्वामी गुरु महाराजकी आवाज सुनके गजरदम् आसनसे उठ खड़े हुवे और साधुओंके वीटिये सब ठिकाने लगा दिये, याने जब तक आचार्य महाराज अन्दर नहीं आये इतनेमें उन्होंने साधुओंके वीटिये उन्होंके

स्थान पर रख दिये और गुरुमहाराजके सन्मुख जा कर अपने वस्त्रसे उनके पाँव पूँछ कर प्रासूक पानीसे धोये। गुरुमहाराजके लिए आसन बिछा दिया। गुरुमहाराज भी आसन पर बैठ गये और यह विचार करने लगे कि श्रुतसागर पारगामी इस बालक महात्माकी शक्तिको न जान कर अन्य साधु इसकी अवज्ञा न करें और इसकी शक्ति उन्हें मालूम होवे ऐसा कोई उपाय करना योग्य है। यह विचार कर आचार्य महाराज रात्रिके समय सब साधुओंको बुला कर कहने लगे कि भाई! कल मुझे अमुक गाँव जाना है और वहाँ मुझे दो चार दिन लगेंगे। गुरुमहाराजका यह वचन सुनके साधु विनयपूर्वक बोले कि भगवन्! आपके पीछे हमारा वाँचनाचार्य कौन?

गुरुमहाराज बोले—जब तक मैं आऊँगा तब तक तुम्हें वाँचना वज्रमुनि देगा। यह सुनके साधुओंने भी स्वीकार कर लिया और गुरुमहाराजके भक्त होनेसे उस बात पर कुछ भी इतराज न किया। प्रातःकाल होने पर गुरुमहाराज तो एक किसी छोटे साधुको साथ लेके जिस गाँव जाना था वहाँ पधार गये। इधर वाँचनाके समय बालर्षि, श्री वज्रस्वामी गुरुमहाराजकी आज्ञा है यह विचार कर वाँचना देनेके लिए आसन पर बैठ गये। साधुसमुदाय भी गुरुमहाराजके तुल्य ही उनका विनय करके वाँचना लेनेके लिए बैठ गये। उस वक्त श्री वज्रस्वामीने मेघकी धाराके सदृश वाणीसे एकादशाङ्गीकी वाँचना प्रारम्भ कर दी। वज्रर्षिकी पाठनशैलीको देखके अल्प प्रज्ञावाले भी साधु उनके पास पठनार्थ आ गये। अमोघ वाँचनावाले श्री वज्रस्वामी उन साधुओंको क्रमसे वाँचना देते रहे। साधुसमुदाय श्री वज्रस्वामीकी ज्ञान, धैर्यता तथा पाठनशैली देखके बड़ा विस्मित हुआ और प्रथमकी जो शंकायें थीं वे भी पूछीं, श्री वज्रस्वामीने भी उनकी शंकायें निर्मूल नाश की। गुरुमहाराजके पास

जितना अनेक वाँचनाओंसे वे साधु ज्ञान प्राप्त करते थे उतना ही ज्ञान श्री वज्रस्वामीकी एक वाँचनासे प्राप्त कर लिया और उनके गुणोंसे रंजित होके उन्हें गुरुमहाराजसे भी अधिक मानते हुवे विचार करते हैं कि यदि गुरुमहाराज कुछ विलंबसे आवें तो हमारा श्रुत स्कन्ध जलदी समाप्त हो जावे । इधर गुरुमहाराजने विचार किया कि इतने दिनोंमें वज्रके गुण साधुओंको ज्ञात हो गये होंगे, अब मैं चल कर जो उसने नहीं पढ़ा है सो उसे पढ़ाऊँ । यह विचार कर आचार्य महाराज जिस दिन आनेको कह गये थे उसी दिन पीछे आगये । उस वक्त श्री वज्रर्षिके सहित समस्त साधुमंडलने गुरुमहाराजको वन्दन किया ।

गुरुमहाराजने भी उनको कुशल प्रश्नपूर्वक पूछा कि—क्यों भाई! तुम्हारे स्वाध्यायका निर्वाह तो अच्छी तरह होता है? आचार्य महाराजके मुखारविन्दसे यह प्रश्न सुनके साधुओंने उत्तर दिया कि आपकी कृपासे, साधुओंने वन्दना पूर्वक गुरुमहाराजसे यह विज्ञप्ति की कि भगवन्! आपकी कृपासे हमारा वाँचनाचार्य वज्रर्षि ही हो और आज तक इनके गुण तथा इनकी शक्तिको न जानके जो हमसे इनकी अवज्ञा हुई है सो क्षमानिधि माफ़ करें । आजसे ये हमारे लिए आपके ही तुल्य हैं क्योंकि गुणवाली वस्तु छोटी भी गुणोंसे बड़ी मानी जाती है और कहा भी है कि—न धर्म वृद्धेषु वयः समीक्षते । यह सुन कर आचार्य महाराज बोले—हमारा जो यहाँसे दूसरे गाँव जाना हुआ था, उसका यही कारण था कि हमारे अभावमें साधुओंको वज्रके गुण ज्ञात हों, अन्यथा यह वाँचनाचार्यकी पदवीके योग्य नहीं क्योंकि इसने गुरु अदत्त श्रुत ग्रहण किया है, केवल श्रवण मात्रसे ही इतना ज्ञान प्राप्त किया है, अत एव इसको अल्प क्रियानुष्ठान करना चाहिये पीछे यह आचार्यपदके योग्य होगा ।

यह कहके गुरुमहाराजने पूर्व अपठित श्रुत सह अर्थ शीघ्रही वज्र स्वामिको पढ़ा दिया और महा प्रज्ञावान् श्री वज्रस्वामीको भी विनयादि गुणोंसे विद्या ऐसे प्राप्त हो गई जैसे कि आदर्शमें प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। इस तरह श्री वज्रर्षि ऐसे श्रुतपारग होगये कि चिरकालीन जो गुरुमहाराजके भी संदेह थे उनको भी शीघ्र ही निर्मूल करने लगे और गुरुमहाराजके पास जितना दृष्टिवाद था वह सब ही पढ़ लिया परन्तु पढ़नेसे तृप्ति न हुई।

एक दिन आचार्य महाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुए सपरिवार दशपुर नगरमें पधारे। उस समय उज्जयिनी नगरीमें दशपूर्वधारी श्री भद्रगुप्ताचार्य थे। दशपुर नगरमें जाकर गुरुमहाराज यह विचार करने लगे कि श्री भद्रगुप्ताचार्यके पास शिष्योंको दशपूर्व पढ़ावें, परन्तु एकादशाङ्गीका ही पाठ इनको कठिन पड़ता है तो फिर जिसमें मेरी भी बुद्धि प्रवेश नहीं करती ऐसी जो दशपूर्वकी विद्या है उसे ये कैसे ग्रहण कर सकेंगे? अथवा चिन्ता करनेसे क्या मेरे मनोरथ पूर्ण करनेवाला वज्रर्षि है, जिसका पदानुसार लब्धिसे मुझे प्रथम ही प्रत्यय हो चुका है। यह विचार कर गुरुमहाराज श्री वज्रर्षिको बोले—वत्स! तू उज्जयिनीको जा और तत्रस्थ श्री भद्रगुप्ताचार्यके पास दशपूर्वका अध्ययन कर, क्योंकि इन साधुओंमेंसे तो तेरे समान बुद्धिवाला कोई नहीं, उनके पास दशपूर्व पढ़ कर हमारी आज्ञासे शीघ्र ही आना। जैसे कूवेसे पानी सर्व वृक्षोंमें जाता है वैसे ही तेरे मुँहसे दशपूर्व सब साधुओंमें पसरेंगे। इस तरह श्री सिंहगिरि आचार्य महाराजने वज्रर्षिको दशपूर्वकी विद्या पढ़ानेके लिए उत्कंठित करके उज्जयिनी जानेकी आज्ञा दी और दो साधु उनके साथ कर दिये। श्री वज्रस्वामी भी गुरुमहाराजकी आज्ञा पा कर और भक्तिपूर्वक नमस्कार करके उज्जयिनीके प्रति विहार कर गये।

थोड़े ही दिनोंमें वज्रस्वामी श्री भद्रगुप्त महाराजके चरण कमलोंसे पवित्र उज्जयिनीमें पहुँच गये । जिस दिन श्री वज्रस्वामी उज्जयिनीमें पहुँचे उसी दिन रात्रिके समय श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजने यह स्वप्न देखा कि मेरे हाथसे पड़ता हुआ दूधका भरा पात्र किसी एक आगन्तुकने पी लिया और वह बड़ी तृप्तिको प्राप्त हुआ । यह स्वप्न देखके प्रातःकाल गुरुमहाराजने शिष्योंके समक्ष निवेदन किया । जब शिष्यवर्ग स्वप्न सुनके नाना प्रकारकी कल्पनायें करने लगा । उस वक्त गुरुमहाराज कहने लगे भाई! आज कोई भी अतिथि आनेवाला है और हमसे अर्थ सहित सर्व श्रुतको ग्रहण करेगा । इधरसे श्री वज्रस्वामी भी प्रभातके समय नगरीमें प्रवेश करके श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजके उपाश्रयमें आ पहूँचे । श्री भद्रागुप्ताचार्य महाराजने श्री वज्र स्वामीको दूरसे ही देख कर आनन्द पूर्ण हृदय होकर बड़े प्रेमसे उनका स्वागत किया । प्रसिद्धिके सदृश ही उनकी आकृति देख कर श्रुतसागर श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजने निश्चय कर लिया कि यह महा प्रज्ञ सुनन्दा सूनु वज्र मुनि है । वन्दना करनेके लिए सन्मुख हुवे हुवे बालर्षि श्री वज्रको आचार्य महाराजने आनन्दित हो कर अपने अंकमें बैठा लिया क्योंकि उत्कंठा बलीयसी होती है विनयको नहीं देखती । आचार्य महाराज वज्रर्षिको अपनी गोदमें बैठाके और उसके शरीररूप अम्भोजपे अपने नेत्रोंको भृंगकी आचरणा कराते हुए उनके स्वागतमें यह श्लोक बोले—

कच्चित्सुख विहारस्ते कच्चित्तेऽङ्गमनामयम् ।
कच्चित्तपस्ते निर्विघ्नं कच्चित्ते कुशली गुरुः ॥

इस तरह कुशल प्रश्नपूर्वक आचार्य महाराज बोले—वज्रर्षे! यहाँ तुम्हारा आगमन किसी कार्यसे हुआ है या स्वाभाविक? यह प्रश्न तथा पूर्वोक्त कुशल प्रश्न सुनके श्री वज्रर्षि आचार्य महाराजको

वन्दना कर यों बोले कि जो जो कुशल प्रश्न आप श्रीने पूछे सो सो आप पूज्यपादोंकी कृपासे वैसे ही हैं और गुरुमहाराजकी आज्ञासे आपके चरणारविन्दोंमें दशपूर्वी पढ़नेके लिए आया हूँ सो भगवन् वाँचनाद्वारा अनुग्रह कर मुझे कृतार्थ करें । आचार्य महाराज सानन्द वाँचना देके उनके मनोरथको पूर्ण करने लगे । विनय-गुण-गुंफित श्री वज्रर्षि भी अल्प ही कालमें दशपूर्वके पाठी हो गए । दशपूर्व पढ़ जानेपर श्री वज्रर्षि विचार करते कि जहाँपर प्रथम विद्या पढना प्रारंभित किया है वहाँपर ही श्रुतकी अनुज्ञा ग्रहण करनी चाहिये । यह विचार कर श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजसे अपने गुरु श्री सिंहगिरि आचार्य महाराजके पास जानेकी आज्ञा लेके जिस तरह वर्षाकालका मेघ जलसे भरा हुआ आता है वैसे ही श्रुतरूप जलसे भरे हुए श्री वज्रर्षि दशपुर नगरमें गुरुमहाराजके पास आ गये । श्रुतसागरके लिए अगस्तिके समान आए हुए श्री वज्रर्षिको गुरुमहाराजने पूर्व अनुज्ञा दी । श्रुत अनुज्ञा देनेके समय जम्भक जातिके देवोंने दिव्य कुसुमादि वृष्टिसे श्री वज्रस्वामीकी महिमा की । पश्चात् थोड़े ही दिनोंके बाद गुरुमहाराज श्री वज्रस्वामीको अपने पट्टपर स्थापन कर और आप अन्नपानादिका प्रत्याख्यान कर सुरलोक सिधारे । अब आचार्य श्री वज्रस्वामी पाँचसौ साधुओंके नायक बने हुए भव्यजन कैरवोंको चंद्रमाके समान बोध करते हुवे भूमिपर विचरते हैं और जहाँ जहाँ जाते हैं वहाँ वहाँ उनके निर्मल शील तथा लोकोत्तर श्रुत, सौभाग्य और लावण्यादि गुणोंसे लोग चकित होजाते हैं । इधरसे पाटलीपुत्र नगरमें धन नामका एक साहूकार रहता था, वह नामसे तो धन था ही मगर धनसे भी धनदके समान ही था और अन्य विनयादि गुणोंसे भी श्रेष्ट था । उसके एक बड़ी ही सुशीला रुक्मिणी नामकी कन्या थी, वह रूपलावण्यसे तो मानो रुक्मिणी ही

थी। उसी धनश्रेष्ठीकी यानशालामें श्री वज्रस्वामीके हाथसे प्रव्रजिता साध्वियां रहती थीं । रुक्मिणी उनके पास हमेशह जाती थी अत एव उनसे श्री वज्रस्वामीके सौभाग्यादि गुण सुनके रुक्मिणीने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि वज्र पति होवे तो ही संसारके सुखोंका अनुभव करना अन्य था नहीं । इस प्रतिज्ञाको सुन कर साध्वियोंने रुक्मिणीको समझाया कि अरी मुग्धे! वीतराग वज्रस्वामीको क्यों इच्छती है, उन्होंने तो दीक्षा ली हुई है । रुक्मिणी बोली–यदि वज्र स्वामी प्रव्रजित होगये तो मैं भी प्रव्रजा ग्रहण करूँगी जो गति उनकी सो ही मेरी । यह कह कर श्री वज्रस्वामीके गुणोंको स्मरण करती हुई काल व्यतीत करती है । इधर दैवयोग क्रमसे विहार करते हुए श्री वज्रस्वामी भी पाटलीपुत्र नगरमें आ पधारे । वज्रर्षिका आगमन सुन कर पाटलीपुत्र नगरका राजा श्री वज्रस्वामीको महती ऋद्धिके साथ सपरिवार अभिवन्दन करनेके लिए आया ।

श्री वज्रर्षिके साधु समुदायको देखके साश्चर्य राजा विचारमें पड़ गया, क्योंकि सब ही सुन्दर आकृतिवान्, प्रिय बोलनेवाले, समतावाले, ममता रहित और सब ही विकसित मुखारविन्दवाले थे । अत एव राजा श्री वज्रस्वामीको पैछान न सका और साधुओंसे पूछने लगा कि भगवन्? आपमें श्री वज्रर्षि कौनसे हैं? साधु बोले–राजन्! हम तो उनके शिष्य हैं आप हमारे अन्दर उनकी कल्पना मत करो क्योंकि कहाँ तो सर्वान्धकार नष्ट करनेवाला दिनकर और कहाँ खद्योत पोत? इस तरह सब साधुओंसे पूछते हुए राजाने साधु-समुदायके पीछे ठहरे हुए मोहाद्रिको वज्रके समान श्री वज्रर्षिको देखा और उल्लासपूर्ण भक्तिसे पंचांग नमस्कार किया । नमस्कार करते समय राजाके मुकुटकी कान्ति गुरुमहाराजके चरणोंपे पड़ती हुई यह भान कराती थी मानो निर्मल जलमे चरणोंका प्रक्षालन हो

रहा है । श्री वज्रस्वामी भी सपरिवार नगरसे बाहर ही उद्यानमें एक वृक्षकी छायामें बैठ गये और राजा तथा नगरवासी जनोंपर अनुग्रह कर धर्मदेशना देने लगे । श्री वज्रस्वामीकी देशना सुनके राजा तथा पुरवासी जनसमुदाय ऐसा आन्दित हुआ जैसा कि मेघधाराको प्राप्त करके चातक होता है । देशना समाप्त होनेपर राजा गुरुमहाराजको नमस्कार करके अपने स्थानपर चला गया और अपने रनवासमें जाकर अपनी प्रियाओंसे कहने लगा कि आज बाह्योद्यानमें ठहरे हुए श्री वज्रस्वामीको देखके उनको वन्दन करके, उनकी धर्मदेशना सुनके मेरे नेत्र तथा देह और कर्ण कृतार्थ होगये हैं । मुझे आजका ही दिन प्रशस्त हुआ है और मैं आज ही अपनी आत्माको धन्य समझता हूँ जिससे आज मोहान्धकारको नाश करनेमें सूर्यके समान श्री वज्रस्वामीका दर्शन हुआ । यदि तुम्हें अपना जन्म सफल करना हो तो तुम भी शीघ्र जाकर उन महात्माओंके दर्शन करके अपनी आत्माको पवित्र करो । अपने स्वामीका यह वचन सुनके हर्षके उत्कर्षसे विकसित मुखारविन्दवाली रानियाँ हाथ जोड़ कर बोली हे स्वामिन्! सूरीश्वर महाराजका आगमन सुन कर हम स्वयमेव ही उनके दर्शनोंको उत्सुख हैं उसमें भी फिर आपकी आज्ञा हो गई इससे हम अपना अहोभाग्य समझती हैं । यह कह और वाहनोंमें बैठ कर—श्री वज्रस्वामीके पादपद्मोंसे पवित्र उद्यानमें जाकर गुरुमहाराजको विधिपूर्वक नमस्कार किया ।

इधर रुक्मिणी भी नगरवासी जनोंसे श्री वज्रस्वामीका आना सुनके जैसे योगी जन अपने आत्माका ध्यान करता है वैसे ही श्री वज्रस्वामीका ध्यान करने लगी और दूसरे दिन अपनी लज्जा उतार कर सखीके मुंहसे अपने पिताको यह समाचार कहलाया कि यदि आप मेरा विवाह करना चाहते हैं तो इस वक्त मेरे पु-

ण्यसे श्री वज्रस्वामी आगये हैं अब आप शीघ्रही विलंम्ब रहित उनके साथ मेरा विवाह करा दें, क्योंकि वायुके समान इनकी एकत्र स्थिति नहीं होती और यदि यह बात ऐसे न होगी तो मुझे भी मरणका ही शरण होगा । इस तरह पुत्रीके अत्याग्रहसे धनश्रेष्ठीने भी यह बात मंजूर कर ली । इधर श्री वज्रस्वामीने नगरमें आकर धर्मदेशना दी । उस वक्त श्री वज्रस्वामीके मुखारविन्दसे संसार दावानलको वर्षाकालके मेघके समान देशना सुनके नगरवासी जनोंने बड़ा लाभ उठाया, परन्तु देशना शान्त होनेपर लोग परस्पर यह बोलने लगे कि भाई! वज्रस्वामिके गुणोंका पार कौन पासकता है जिनकी देशनाके रसमें मग्न हुए हुए जनोंको तो यह भान होता है कि मुक्तावस्थामें ही आगये । परन्तु गुणानुसार इनका रूप होता तो फिर सुवर्णमें सुगन्ध समान होता । लोगोंका यह विचार करनेका कारण यह था कि जिस वक्त श्री वज्रस्वामी नगरमें पधारे थे उस वक्त उन्होंने अपनी शक्तिसे अपना रूप नगरके क्षोभकी शंकासे संक्षिप्त कर लिया था । पूर्वोक्त नगरवासियोंके विचार गुरुमहाराज अपने अतिशय ज्ञानबलसे समझ गये । अब दूसरे दिन उन्होंने जिनशासनकी महिमा दिखानेके लिए हजार पाँखड़ीवाले एक कमलकी रचना की और अपना स्वाभाविक रूप करके राजहंसके समान उस कमलपर बैठके देशना देने लगे ।

श्री वज्रस्वामीका नैसर्गिक रूप देखके पुरवासी लोग बड़े विस्मित हुए और जैसे संगीतके रसमें निमग्न होकर मनुष्य मस्तकको धुनता है वैसे ही अपने सिरको धुनते हुवे परस्पर कहने लगे, अहो वज्रस्वामीका स्वाभाविक रूप तो यह है । बस आज ही गुण और आकृतिकी सादृश्यता पूर्ण हुई है । इस अवसरमें धनश्रेष्ठी भी वहाँ ही था, श्री वज्रस्वामीका रूप देखके अपनी आत्माको धन्य समझता

हुआ मन ही मन अपनी पुत्रीकी प्रशंसा करने लगा । धनश्रेष्टी, भगवान वज्रस्वामीकी देशना सुननेको न आया था किन्तु बहुत सा धन लेकर स्वार्थिक प्रार्थनाके लिए आया था । वह प्रार्थना यह थी, देशना समाप्त होनेपर धनश्रेष्टी हाथ जोड़ कर श्री वज्रस्वामीसे बोला भगवन्! कृपा करके आप मेरी पुत्रीके साथ पानीग्रहण करके मुझे कृतार्थ करें, क्योंकि मैं जानता हूँ कि कहाँ आप देवकुमार सदृशरूपवाले और कहाँ मनुष्य कीटिका बिचारी मेरी पुत्री? । तथापि सन्त पुरुष प्रार्थना भंग नहीं करते । अत एव इसको ग्रहण करो और हस्त मोचनमें क्रोड़ों ही सुवर्ण मोहरें मुझसे ग्रहण करो । श्री वज्रस्वामी धनश्रेष्टीके कथनको सुनकर समझ गये कि यह बिचारा कोई मुग्ध जन है, इसको साधुओंके आचार विचारकी खबर नहीं । कुछ मन्द हास्य कर वज्रर्षि बोले—भाई! तुम्हारी कन्या तथा धनसे सरा, हम इन वस्तुओंको ग्रहण नहीं करते क्योंकि स्त्रियां विषयरूप होनेसे पश्चात् विषरूप होजाती हैं । यथा किंपाक फल खानेके समय मधुर लगता है परन्तु अन्दर जानेपर प्राण लेकर ही छोड़ता है वैसा ही विषयसुख है । दूसरे हमसाधुओंका पहला ही व्रत प्राणातिपात विरमण है, और स्त्रीके साथ एक ही दफा संसर्ग करनेमें नव लाख जीवोंकी हानी होती है और २ लाख समूर्छम जीवोंकी उत्पत्ति योनीमें सदैव रहती है । तीसरे रागका मुख्य कारण होनेसे जैनागममें स्त्रीका संसर्ग साधुके लिए सर्वथा निषेध है । अत एव जन्मान्तरमें भी दुःख देनेवाले विषयोंको जान कर ऐसा कौन मनुष्य है जो अंगीकार करे? हाँ यदि तुम्हारी पुत्री मेरेपर रागवाली है तो वह सुशीला मेरी आज्ञासे—इस लोक तथा परलोकमें हितकारी और निर्वाण लक्ष्मीको प्राप्त करानेमें लग्न पत्रिकाके समान दीक्षाको ग्रहण कर ले और संसारसागरमें गोते देनेवाला जो विवाह

है उसका आग्रह छोड़ दे । इस तरह श्री वज्रस्वामीके हितगर्भित वचनोंको सुन कर अल्प कर्मा रुक्मिणीने बोधको प्राप्त होकर प्रव्रजा ग्रहण कर ली । यह सब बनाव देख कर नगर निवासी लोगोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ । अपने मन ही मन लोग विचार करने लगे कि–अहो! जैनदर्शनकी सत्यता और निर्लोभता, जिसमें स्वार्थका तो लेश भी नहीं । यह विचार कर बहुतसे जनोंने जैनधर्म स्वीकार किया । इस प्रकार जैनदर्शनकी प्रभावना करके अब श्री वज्रस्वामी वहाँसे अन्यत्र विहार कर गये । एक दिन श्री वज्रस्वामीने जन्मसे ही सिद्ध जो पदानुसारी लब्धि थी, उसके प्रभावसे श्री संघके उपकारार्थ आचारांग सूत्रमें महा प्रज्ञा नामक अध्ययनसे आकाश गामिनी विद्याका उद्धार किया और विचारा कि इस विद्याके प्रभावसे मुझमें इतनी शक्ति है कि जंबूद्वीपसे मानुषोत्तर पर्वत तक जा सकता हूँ याने संपूर्ण मनुष्य क्षेत्र तक जा सकता हूँ । यह विद्या किसी अन्यको देनी योग्य नहीं क्योंकि आजसे आगे अल्प प्रज्ञा और अल्प सत्ववाले मनुष्य होंगे । जैसे मकरसंक्रान्तिमें सूर्यमंडल आता है वैसे ही श्री वज्रस्वामी एक दिन क्रमसे विहार करते हुए पूर्व दिशासे उत्तर दिशामें पधारे । उस समय वहाँपर अति भीषण दुर्भिक्ष पड़ रहा था । अन्नकी अप्राप्तिसे वहाँके मनुष्य बड़े तंग हो रहे थे । जैसे साधु लोग अल्पाहारी होते हैं वैसे ही वहाँके लोग भी दुर्भिक्षके प्रभावसे अल्पाहारी होगये और जहाँपर दानशालायें थीं वहाँपर बड़े बड़े धनाढ्य लोग भी दान ग्रहण करनेके लिए जाने लगे । क्योंकि अन्नके विना धनको क्या करें? जिस वक्त बाजारमें दधि तथा दूध बेचनेवाले हंडे भरके लाते हैं उस वक्त भूखे कंगाल लोग बाजारमें फिरनेवाले डंडा मारके उनके हंडोंको फूट देते हैं और दही तथा दूध जमीनपर पड़ जानेपर कुत्तोंके समान उसे

चाटने लग जाते हैं । उस दुर्भिक्षमें मारे भूखके मनुष्योंका अस्थि तथा चर्म ही अवशेष रह गया है; शरीरकी नश तथा आँतें तो ऐसी मालूम होती हैं मानो शरीरको नील सूतकी डोरियोंसे लपेट लिया है । उस दारुण दुर्भिक्षके प्रभावसे परम दयालु श्रावक लोगोंकी भी यह हालत हो गई कि जिस वक्त साधु लोग भिक्षाके लिए उनके घरोंमें जाते हैं उस वक्त विज्ञप्ति करनी तो दूर रही किन्तु गोचरीके दोष प्रगट करते हैं । बस ज्यादह क्या कहें यहाँ तक उस दुर्भिक्षका असर पहुँचा कि बड़े बड़े धनी लोग तथा आबरुदार लुट जानेके भयसे अपने मकानोंसे भी बाहिर नहीं निकलते । इस भयानक समयमें समस्त संघने मिल कर सुनंदासूनु श्री वज्रस्वामीको प्रार्थना की कि भगवन्! इस दुःखार्णवसे हमारा निस्तार करो । संघकी रक्षा करनेमें संयतोको यदि विद्या आदिका भी प्रयोग करना पड़े तो कुछ क्षति नहीं । इस तरह श्री संघके करुणाजनक वाक्योंको सुन कर करुणा समुद्र श्री वज्रस्वामीने विद्या शक्तिसे चक्रवर्तीके चर्मरत्नके समान एक बड़ा विशाल वस्त्रका पट बना कर समस्त संघको आज्ञा कर दी कि इस पटके ऊपर बैठ जाओ । पटपर सकल संघके बैठ जानेपर श्री वज्रभगवान् भी पटपर बैठ गये और उसे आकाशमें उड़ाया । इस समय श्री वज्रस्वामीका शय्यातर अपने सगेसंबंधियोंको पटपर बैठनेके लिये बुलाने गया हुवा था । वहाँपर आकर देखता है तो पट आकाशमें जा रहा है । यह देख कर बड़ा दुःखित हुआ और उसी वक्त अपने केशोंका लोच करके आकाशमें जाते हुवे श्री वज्रस्वामीको यों बोला कि भगवन्! पहले तो मैं आपका शय्यातर था और आज मैं आपका साधर्मी होगया हूँ तो भी आप मेरा परित्राण न करोगे? इस तरह शय्यातरके उपालंभ गर्भित वचन सुनके भगवान श्री वज्रस्वामीने आगमोक्त सूत्रार्थको स्मरण किया ।

वह सूत्र यह है—

ये साधर्मिकवात्सल्ये स्वाध्याये चरणेऽपिवा ।
तीर्थप्रभावनायां बोद्युक्तास्तांस्तारयेन्मुनिः ॥

इस वाक्यको स्मरण करके पट नीचे उतार कर उस शय्यातरको भी पट पर चढ़ा लिया । अब आकाशमार्गसे पुर नगर तथा सरित्समुद्रादि अवलोकन करते हुए और रास्तेमें रहनेवाले व्यन्तर देव तथा ज्योतिषि देवोंका भक्तिविनय स्वीकारते हुए श्री वज्रस्वामी पृथिवी पर रहे हुए जो रास्तेमें भगवद्देवके चैत्य आते हैं उनको नमस्कार करते हुए तथा पटपर बैठे हुए जनोंको धर्मदेशना सुनाते हुए महापुरी नामकी नगरीमें जा पहुँचे । वहाँ भली प्रकारसे सुभिक्ष था और वहाँके श्रावक लोग भी बड़े धनाढ्य थे, परन्तु वहाँका राजा बौद्धभक्त था । वहाँके जैन तथा बौद्ध परस्पर स्पर्धापूर्वक देव पूजादि किया करते थे, परन्तु जैनलोग विशेष द्रव्य व्यय करके नगरके सब ही पुष्पादि पूजोपकरण ग्रहण कर लेते और बौद्धलोग हाथ मलते रह जाते, क्योंकि वे इतना द्रव्य न खर्च सकते थे । अत एव पुष्पादि सामग्री प्राप्त करनेके लिए असमर्थ होतेथे । इस तरह जैनोंसे परास्त होकर तथा लज्जित होकरके उन बौद्धभक्तोंने राजासे कह कर जैनियोंको पुष्पादि लेने बंद करा दिये । जैनलोग बाजारमें जा कर पुष्पवालोंकी दुकानसे बहुत मूल्य देकर भी पुष्प लेने चाहते हैं परन्तु राजाकी आज्ञा न होनेसे आरामिक लोग उन्हें पुष्प नहीं देते । इधरसे पर्वाधिराज श्री पर्युषणापर्वके आने पर श्रावकोंको बड़ा फिकर हुआ क्योंकि पर्वके दिनोंमें देवपूजादि विशेष करके होनी चाहिये, सो वह पुष्पादि सामग्रीके विना दुर्लभ है । अत एव दुःखित हुए हुए वहाँके सकल संघने वहाँ रहे हुए श्री वज्रस्वामीसे दयाजनक प्रार्थना की कि स्वामिन्! इस समय पर्युषणापर्वके आनेपर भी यदि भगवद्देवकी

पूजा पुष्पादिसे न होगी तो हमारा जीना ही व्यर्थ है और पुष्पादि सामग्री हम लोग विशेष द्रव्य व्यय करनेसे भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि राजाकी आज्ञा बलवती है, राजा बौद्धधर्मी है अत एव उसने बौद्ध लोगोंके कहनेसे ऐसा सक्त हुक्म कर दिया है कि माली लोग बहुत मूल्य लेकर भी पुष्प नहीं देते। अब हम क्या करें हम धनवान होकर भी अपने मनोरथको पूर्ण नहीं कर सकते। जिनमंदिरोंमें अब तुलसी तथा बर्बरी आदिसे पूजा होने लगी, हमारा धनाढ्य होना किस काम आया? और हम जीते ही मृतक तुल्य हैं। अत एव भगवन्! आपके विना इस अवसरमें और कोई मनुष्य शासनकी उन्नति नहीं कर सकता।

आप सर्व शक्तिमान् हैं आज तक इतने दिन ऊँगलियोंपे गिनते गिनते निकाले हैं परन्तु अब पर्युषणपर्वके आनेपर भी यदि हम लोग भाव पूजा ही करें और द्रव्यपूजा न होवे तो इसमें जिनशासनकी बड़ी लघुता है अत एव भगवन्! प्रवचनकी प्रभावना करके हमें जीवित करो। श्रावकोंके मुखसे यह सब वृत्तान्त सुनके श्री वज्रस्वामी बोले भाई तुम घबराओ मत मैं कुछ प्रयत्न करूँगा। यह कहके सुनन्दासूनु श्री वज्रभगवान देवके समान आकाशमें उड़ गये और क्षणभरमें माहेश्वरीपुरीके उद्यानमें जहाँ पर हुताशन नामक यक्षका उपवन था वहाँ पहुँचे। उस उपवनका जो माली था वह वज्रस्वामीके पिता-श्री धनगिरिका मित्र था अनभ्र वृष्टिके समान श्री वज्रस्वामीका वहाँ पर अकस्मात आना देखके वह तड़ित नामक माली हर्षित होकर बोला कि तिथियोंमें आजकी तिथि और दिनोंमें आजका दिन मेरे लिए बड़ा ही पवित्र हुआ है और मैं अपनी आत्माको भी पवित्र समझता हूँ जिससे कि आपसे महात्माओंका मुझसे रंक मनुष्यको दर्शन हुआ। आप कृपा कर मेरे लायक कार्य फर-

मावें। भगवन्! इस उपवनमें मैं आपका क्या आतिथ्य करूँ? उस वक्त श्री वज्रस्वामी बोले–उद्यानपालक! मुझे पुष्पोंसे प्रयोजन है सो तुम देनेके लिए समर्थ हो। गुरुमहाराजका यह वचन सुनके माली विनयसे नम्र हुआ हुआ बोला भगवन्! पुष्प ही ग्रहण करके मुझे कृतार्थ करो। मेरे इस उपवनमें प्रतिदिन वीस लाख पुष्प उतरते हैं। भगवान् वज्रस्वामी बोले–तो तुम पुष्प इकट्ठे करो और हम इधर जाकर आते हैं। यह कह वज्रस्वामी आकाशमार्गसे उड़ गये। श्री वज्रस्वामी वहाँसे हिमवान् पर्वतपे पहुँचे। हिमवानगिरिकी शोभा अतीव मनोहर थी। वहाँ पर एक पद्महृद ऐसा था कि मानों दशवाँ अमृत कुण्ड है। किसी जगह गंगा सिन्धुके जलमें देवरूपी करी क्रीड़ा कर रहे हैं, कहीं किंनरियोंके गायनसे उनके पीछे मृग समूह फिर रहे हैं और कहीं चमरि गायें भाँकार कर रही हैं। वह पर्वत अनेक प्रकारकी धातुओंसे संध्याकालके अभ्रोंकी शोभाको धारण करता है। चंपा, भूर्ज, तगर, सहकारादि वृक्षोंसे गुंफित मेखलावाले और देवताओंके वन्दनीय शाश्वते जिनमंदिरोंसे मंडित लघु हिमालयको दूरसे रविके समान श्री वज्रस्वामीने देखा। तत्रस्थ जो शाश्वती जिन प्रतिमायें थीं उनको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके कमलोंकी सुगंधिसे सुभित जलवाले और मंद पवनसे हिलते हुए तारोंका अनुकरण करनेवाले कमलोंसे परिपूर्ण पद्महृद पर जा पहुँचे। जहाँ पर श्रीदेवीके रहनेका स्थान है, वहाँ पर श्री वज्रस्वामी नभो मार्गसे पहूँचे, उस वक्त प्रातःकालका समय था अत एव श्री देवी भगवद्देवकी पूजाके लिए एक बड़ा भारी पद्म हाथमें लेके जा रही थी। सामने श्री वज्रस्वामीको आते हुए देखके दूरसे ही भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। श्री वज्रस्वामी भी धर्मलाभाशीर्वाद देके ठहर गये, श्री देवी हाथ जोड कर बोली–भगवन्! काम काज हो तो आज्ञा फर-

माओ । वज्रस्वामी–पद्मे ! आज्ञा यही है कि तुम्हारे हाथमें जो यह महापद्म है सो हमें चाहिये, श्रीदेवी–भगवन् ! यह क्या आज्ञा करते हो यदि इंद्रके उपवनके भी पुष्प आपको चाहियें तो मैं ला सकती हूँ । यह कह श्रीदेवीने श्री वज्रस्वामीको वह पद्म दे दिया और कमल देकर भगवान वज्रको विधिपूर्वक वन्दन करके देवपूजा करनेके लिये जिनमंदिरमें चली गई । इधर श्री वज्रस्वामीभी श्रीदेवी अर्पित महापद्मको लेकर आकाश मार्गसे पूर्वोक्त हुताशन उपवनमें जहाँपर पुष्प इकठ्ठे करनेके लिए आज्ञा कर गयेथे वहाँपर आ गये । वहाँ आकर पूर्वोक्त विद्याशक्तिसे एक बड़ा भारी विमान बनाया । तडित नामक मालीसे बीस लाख पुष्प लेके उस विमानमें स्थापन किये और श्रीदेवी अर्पित जो महापद्म था उसको छत्राकार विमानमें स्थापित कर पूर्व भव मित्र जृंभक देवोंको स्मरण किया, वे देवभी स्मरण करनेपर क्षण भरमेंही जैसे कि वज्रीके याद करनेपर आते हैं वैसेही श्रीवज्र-स्वामीकी सेवामें आ गये । गुरु महाराजकी आज्ञासे सबके सब विमानमें बैठकर आकाश मार्गसे गीत वाद्यादि गाते बजाते महापुरीके प्रति चल दिये । क्षण मात्रमेंही महापुरी पहुँचे । आकाशमें देवविमानको आते हुये देख पुरीवासी लोग ऊपरको मुँह उठाके विस्मित होकर परस्पर कहने लगे कि ओहो ! बौद्ध दर्शनका महात्म्य ! कि जिस बौद्ध भगवानकी पूजाके लिए स्वर्गसे देवता लोगभी आ रहे हैं । ऐसे बुद्ध भगवानको वारंवार नमस्कार हो । इस तरह बौद्ध जनोंके बोलते बोलते ही तथा उनके देखते देखते ही वह विमान श्री जिनेश्वर देवके मंदिरकी ओर चला गया । यह देखके बौद्धजन बड़े आश्चर्यमें पड़गये और कहने लगे कि ओहो ! यहतो दैवी प्रभावना जैन दर्शनकी हो रही है

हम तो क्या विचार रहेथे मगर यहतो उससे विपरीत ही निकला। श्री वज्रस्वामीके मित्र देवोंने पर्युषणाओंके आठ दिनतक श्री जिनेश्वर देवके मंदिरोंमें ऐसा उत्सव किया जो मनुष्योंके कभी स्वप्नमेंभी चिंतित न था। इस तरह जैन शासनकी प्रभावना देखके वहाँके बौद्ध मतावलंबी राजाने प्रजा सहित जैन दर्शन अंगीकार करलिया.

इधर दशपुर नगरमें (जो आज मन्दसोरके नामसे प्रसिद्ध है) औद्रायण नामका राजा राज्य करताथा। उसी नगरमें सोमदेव नामक एक ब्राह्मणथा और रुद्रसोमा नामकी उसकी ब्राह्मणीथी। वह ब्राह्मणी परम श्राविकाथी और शीलादि गुणोंसे अलंकृत तथा बड़ी सुशीलाथी। उसके दो लड़केथे, जिसमें बड़ेका नाम आर्यरक्षित तथा छोटेका फल्गुरक्षित था। आर्यरक्षित यज्ञोपवीत ग्रहण करनेके समयसेही अपने पिताके पास विद्याभ्यास करनेमें ही तत्पर रहताथा उसकी बुद्धि बड़ीही विलक्षणथी। थोड़ेही दिनोंमें पिताके पास जितनी विद्याथी सबही ग्रहण करली। परन्तु पढ़नेसे तृप्ति न हुई और उसके पिताकाभी पढ़ानेपर बहुतही प्रेमथा, अतएव सोमदेवने आर्यरक्षितको वेदादिकी विद्या पढ़ानेके लिए पाटलीपुत्र नगरमें भेजा। आर्यरक्षित भी वहाँ रहकर थोड़ेही समयमें वेद, वेदान्त मीमांसा, न्याय, पुराणादि शास्त्र अपने नामके समान अर्थ सहित कंठ करके और विद्यागुरुकी आज्ञा लेकर दशपुर नगरमें आगया।

जब आर्य रक्षित पढ़कर दशपुर नगरमें आया तब वहाँके औद्रायण राजाने उसे हाथी ऊपर चढ़ाकर बड़े सन्मानसे नगरमें प्रवेश कराया। नगरके लोग अनेक प्रकारके उपहार लेकर

उसका सन्मान करनेको आते हैं क्योंकि जो राज्य पूजनीय होता है उसका सबही लोग सन्मान किया करते हैं। जिस मकानमें आर्यरक्षित उतरा है उस मकानके द्वारपे नगरकी स्त्रियां विविध प्रकारके तोरण बांधती हैं और कोई अक्षतोंसे स्वस्तिक करती है। आर्यरक्षित के संबन्धि जनभी आर्यरक्षितकी राजा तथा प्रजासे महिमाको देख अपनेको धन्य मानते हैं.। इस तरह बाह्यशालमें रहा हुआ आर्यरक्षित नाना प्रकारके उपहारोंसे अल्पही दिनोमें बड़ाभारी श्रीमान् होगया। एक दिन विशुद्ध बुद्धिवाला आर्यरक्षित मनमें विचार करने लगा कि अहो? मेरा प्रमाद जोकि आज तक मैंने अपनी जननीकोभी अभिवंदन नहीं किया। मेरे विना माताका क्या हाल हुआ होगा क्योंकि स्त्रियोंके बाह्य प्राण पुत्रही होते हैं। अतएव मेरे प्रवास जन्य दुःखसे माताके इतने दिन कैसे निकले होंगे? मेरे ऊपर जिसका इतनातो स्नेह था कि रातको निद्रामेंभी मेरा नाम स्मरण किया करतीथी. और उसनेही मेरे हितके लिए मुझे प्रेरणा करके विद्याभ्यास करनेको देशान्तरमें भेजाथा। अब अपनी समृद्धि दिखाके तथा अभिवन्द करके माताको आनन्दित करूँ। यह विचार कर आर्यरक्षित दिव्य वस्त्र धारण करके और काश्मीरके केशरका तिलक कर सुगन्धित कुसुमोंकी माला पहिनके नाना प्रकारके आभूषण धारण करके अपने मकानपर गया, प्रथम अपनी माताको विनयपूर्वक नमस्कार किया। मातानेभी आशीर्वाद पूर्वक आर्यरक्षितका स्वागत किया परन्तु जैसा स्वागत पुत्रका करना चाहियेथा वैसा नहीं किन्तु पड़ोसनोंके सा किया। इस बातको आर्यरक्षित भली भाँति समझ गयाकि माताका मन प्रसन्न नहीं है। अतएव आर्यरक्षित हाथ जोड़कर विनयपूर्वक अपनी माता

रुद्रसोमासे कहने लगा–माता! संपूर्ण विद्याओंके पारगामी अपने पुत्रको देखके प्रसन्न क्यों नहीं होती, देखो राजा प्रजा सबही गुरुके समान मेरी पूजा करते हैं। यह सब महिमा अपने पुत्रकी देखकर तुम्हें खुशी मनानी चाहिये। यह सुनकर रुद्रसोमा बोली–पुत्र! तूने हिंसोपदेशक सब शास्त्र पढ़े हैं इससे तेरा परभवमें कुछभी कल्याण नहीं, क्योंकि हिंसोपदेशक शास्त्रोंके पढ़ने तथा पढ़ानेसे सिवाय दुःखके परलोकमें आत्माको सुखका लेशभी नहीं प्राप्त होता। अतएव पुत्र! तुझे नरकाभि मुख हुए देखके खुशी कैसे मनाऊँ? जैसे गाय कर्दममें फस जाती है वैसेही पुत्र! मैंभी खेदरुपी कीचड़में फस गई हूँ। रुद्रसोमा पहलेसेही परम श्राविकाथी अतएव वह यह चाहतीथी कि पुत्र किसीभी तरह धर्ममें लगे तो इसका जन्म सफल हो। रुद्रसोमा बोली पुत्र? यदि तू मुझे मानता है और तू मेरा भक्त है तो स्वर्गापवर्गका हेतुभूत जो दृष्टिवाद है उसको पढ़। माताके ये वचन सुनके आर्यरक्षित मनमें बड़ा खेद करता हुआ विचारता है–हा! मैंने आज तक व्यर्थही श्रम किया–जिससे कि माताको खुशी होनी तो दूर रही उलटा खेद हुआ? आर्यरक्षित माताका भक्त था अतएव हाथ जोड़के बोला–माता मैं तुम्हारी आज्ञासे खुशीसे दृष्टिवाद पढूंगा, पढ़नेसे मेरी तृप्ति अभितक नहीं हुई, परन्तु दृष्टिवाद पढ़ानेवाले गुरुको बताओ। रुद्रसोमा बोली वत्स! तू पहले श्रमणोपसक बन, क्योंकि दृष्टिवादके पढ़ानेवाले श्रमणही हैं अन्य कोई नहीं। आर्यरक्षित दृष्टवादका नामही सुनकर विचारता है कि दृष्टिवाद नाम दर्शन विचार, य हत नामही सुन्दर है जरूर पढ़ना चाहिये। आर्यरक्षित मातासे सविनय बोला–मुझे माताका वचन प्रमाण है। अब वे गुरु कहाँ

मिलेंगे जहाँ मैं जाकर दृष्टिवाद पढ़ूँ। रुद्रसोमा पुत्रके विनयसे हर्षित होकर बोली—वत्स! मुझे आशा है कि तू मेरे मनोरथको पूर्ण करेगा. दृष्टिवादके पढ़ाने वाले भी श्री तोसलिपुत्राचार्य यहाँही अपने इक्षु वाटकके पास एक मकानमें रहते हैं। तू उनके चरणकमलोंकी हंसके समान सेवाकर, वे तुझे दृष्टिवाद पढ़ावेंगे। हाथ जोड़के आर्यरक्षित बोला-माता! ऐसा ही करूँगा, कल सुबह उनके पास जाऊँगा। यों कहकर आर्यरक्षित दृष्टिवादका ही ध्यान करता हुआ रातको सो गया। प्रातःकाल होनेपर दृष्टिवाद रूपी समुद्रको पीनेके लिये अगस्तिके समान आर्यरक्षित अपनी मातासे पूछकर विद्याभ्यास करनेको गुरुमहाराजके पास चल पड़ा। इधर उप पुरनामके एक गाँवमें एक विप्र रहताथा, वह आर्यरक्षितके पिता सोमदेवका मित्रथा। वह आर्यरक्षितका परदेशसे आना तथा उसकी ख्याती सुनकर मिलनेकी उत्कंठासे साड़ेनव इक्षुके गन्ने लेकर दशपुर नगरको आ रहाथा। परन्तु उसने आर्यरक्षितको पहले कभी सकलसे न देखाथा केवल उसके गुणही श्रवण किये थे। अतएव उसे मिलनेकी बड़ीही उत्कंठाथी। दैवयोग इधर आर्यरक्षितका घरसे निकलना और उधरसे उस विप्रका आना, दोनोंकी रास्तेमें ही भेट होगई। आर्यरक्षितको देख विप्रने पूछा भद्र! तुम कौन हो? आर्यरक्षित बोला—मुझे आर्यरक्षित कहते हैं, बुड्ढा विप्र अपने मित्रके पुत्रको पैछानकर बौला-वत्स! कलमैं कुटुंबके कार्य वशसे नहीं आसका, तुम्हारा आगमन सुनकर मुझे एकदिन भी निकालना महीनेके समान हो गया। यों कहकर वह जो साड़ेनव इक्षुके गन्ने लायाथा उन्हें आर्यरक्षितको देने लगा और बोला कि वत्स! ये गन्ने तुम्हारे ही लिए लायाहूँ।

आर्यरक्षित बोला-ये इक्षुके गन्ने तुमने मेरी माताको देने और कहना कि आर्यरक्षितको प्रथममैं ही मिला हूँ और थोड़ी देरमें मैं भी पीछे आता हूँ आर्यरक्षितके कहनेसे बुड्ढे विप्रने वैसाही किया। रुद्र सोमा उन इक्षुके गन्नोंको देखकर विचारने लगी कि यह शकुन मेरे पुत्रको बड़ा ही श्रेयस्कर हुआ है और निश्चय से आर्यरक्षित साढ़ेनव पूर्वका पाठी होगा। इधर आर्यरक्षितभी इस शकुनको मनमें विचारता हुआ जाता है कि इस शकुनसे मैं दृष्टिवादके नव अध्ययन अथवा नव पूर्व और आधा दशवाँ पढूँगा। आर्यरक्षित यह विचार करता हुआ श्री तोसलिपुत्राचार्यके चरण कमलोंसे पवित्र स्थानपर पहुँच गया। परन्तु दरवाजेपर खड़ा होके विचारमें पड़गया कि राजाओंके समानही गुरु महाराजोंके पास जानकारभी एकला नहीं जा सकता, मगर मैंतो जानकारभी नहीं। अतएव थोड़ीदेर यहाँ ठहरूँ। और जब कोइ वंदारु वन्दन करनेको आवे तो उसके साथ अन्दर प्रवेश करूँ यह विचार कर द्वारपालके समान आर्यरक्षित क्षणभर वहाँही ठहरा क्योंकि पंडित पुरुषोंको एकदम साहस करनेमें विवेकही अर्गलाके समान रुकावट करता है। द्वारपर ठहरे हुए आर्यरक्षितने अन्दर स्वाध्याय करते हुए साधुओंकी भैरवी राग गर्भित ध्वनि सुनी। प्रातःकालका समयथा, आर्यरक्षित साधुओंकी स्वाध्याय ध्वनि सुनकर मृगके समान तल्लीन होगया, इतनेमें वहाँ एक ढड्डर नामका श्रावक गुरुओंको नमस्कार करनेके लिए आया और ३ वक्त नीस्सीही कहकर उपाश्रयके अन्दर प्रवेश करके उच्च स्वरसे उसने ईर्यावही की। तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचार्य महाराजको वन्दन किया, फिर क्रमसे सब साधुओंको नमस्कार करके और भूमिकी प्रमार्जना कर गुरु महाराजके सन्मुख बैठगया।

आर्यरक्षितभी ढड्डरके साथही मकानमें प्रवेश करगया और उसकी की हुई विधि देखके तथा सुनकर सब याद करली। उसी तरहसे विधि पूर्वक गुरु महाराजको नमस्कार करके ढड्डरके पास आचार्य महाराजके सन्मुख बैठ गया। परन्तु आर्यरक्षितने ढड्डर श्रावकको प्रणाम नहीं किया। आचार्य महाराज इतनेसेही समझ गये कि यह कोई नवीन श्रावक है क्योंकि उस समयमें यह रिवाजथा और आजकलभी मारवाड़ वगैरह देशोंमें देखा जाता है कि जब कोई धर्म स्थानमें या धर्मसभाओंमें अथवा धर्मगुरुओंके पास जातेहैं तब क्रमसे जो वहाँपर प्रधान पुरुषहों उन्हें नमस्कार करके पश्चात् अपने साधर्मी भाइयोंको प्रणाम कहकर बैठते हैं। परन्तु आर्यरक्षितको यह विधि न आनेमें केवल ढड्डरही कारणथा क्योंकि जिसवक्त वह उपाश्रयमें आयाथा उसवक्त वहाँ कोईभी श्रावक न था। प्रथम ढड्डरही आयाथा। अतएव उसने यह विधि प्रगट न किया। आर्यरक्षितके बैठ जानेपर स्वच्छाशयवाले आचार्य महाराज धर्मलाभ आशिर्वाद देकर बोले–भद्र! तुम्हारा आगमन किधरसे हुआ? विनयसे नम्र होकर आर्यरक्षित बोला–भगवन्! मेरा आना यहाँसेही हुआ है। मेरा आचार श्रमणोपासकोंसे कुछ भिन्न नहीं अर्थात् मुझे श्रावकही समझीये। इतनेमें गुरुमहाराजसे साधु बोले कि भगवन्! यह तो रुद्र सोमाश्राविका का पुत्र वेदादिशास्त्र पारगामी आर्यरक्षित है, जिसको राजाने हाथी पर चढ़ाके नगरमें प्रवेश कराया है। परन्तु यह तो प्रथम गुण स्थानमें रहनेवालोंमें अग्रेसरी गिना जाता है, फिर आश्चर्य है जो यह अपनेको श्रावक कहता है, आर्यरक्षित सविनय बोला–भगवन्! आज़से मैं श्रावकही बन गया हूँ क्या

जीवोंके परिणाम पलटते कुछ देरी लगती है? यहकह आर्यरक्षितने अपना सबही वृत्तान्त गुरुमहाराजसे कह सुनाया और हाथ जोड़कर बोला-भगवन्! अब मुझे दृष्टिवाद पढ़ाकर उपकृत करो। मैंने आजतक हिंसोपदेशक शास्त्र पढ़नेमें व्यर्थही समय खोया है, क्यों कि मैं विवेकरूप चक्षुसे शून्यथा और अब विवेक चक्षुसे मुझे दीखने लगा है। आचार्य महाराज आर्यरक्षितके ऐसे उद्गार सुन-कर और उसे योग्य समझकर बोले-भद्र! यदि दृष्टिवाद पढ़नेकी इच्छा है तो प्रव्रज्या ग्रहणकरो पश्चात् दृष्टिवाद पढ़ाया जायगा, क्योंकि गृहस्थीको दृष्टिवाद पढ़नेका अधिकार नहीं।

आर्यरक्षित-भगवन्! प्रव्रज्या चाहे अभी देदो मेरे मनोरथ को पूर्ण करनेमें कामधेनुके समान प्रव्रज्या मुझे कोई दुष्कर नहीं है परन्तु भगवन्! कृपया आप विहारकरके अन्य स्थान पर चलें यहाँ दीक्षा लेनेसे मुझे राजा तथा नगर निवासी लोग बहुत विघ्न करेंगे क्योंकि वे सब लोग मेरे अत्यंत रागी हैं। यह बात आचार्य महाराजनेभी स्वीकार करली और सपरिवार वहाँसे विहार करदिया। आर्यरक्षितभी भृत्यके समान आगे होगया। गुरुमहाराजने अन्यत्रजाके आर्यरक्षितको दीक्षा देदी। श्री हेम-चंद्राचार्य महाराजका फरमान है कि श्री महावीर भगवानके शासनमें साधुओंमें शिष्यकी चोरीका व्यवहार यह प्रथमही हुआ है। अब श्री आर्यरक्षित देवोंकेभी पूजनीय होगये। गुरु महाराज आर्यरक्षितको बड़ी प्रीतिसे प्रथम एकादशांगकी विद्या पढ़ाने लगे, क्योंकि दृष्टिवाद. द्वादशांगका बारहवाँ अङ्गहै। उस दृष्टिवादके ५ भेद हैं जिसमें पहलेका नाम परिकर्म. दूसरेका सूत्र. तीसरेका पूर्वानुयोग. चतुर्थका पूर्वगत. और पाँचवेंका चूलिका। इन पाँचों भेदोंमें जो चतुर्थ पूर्वगत भेदहै उसके अन्त-र्गत चतुर्दश पूर्व हैं उन चतुर्दश पूर्वोंके नाम क्रमसे ये हैं.

१ उत्पादपूर्व २ अग्रायणीय ३ वीर्यप्रवाद ४ अस्तिनास्ति प्रवाद ५ ज्ञानप्रवाद ६ सत्यप्रवाद ७ आत्म प्रवाद ८ कर्मप्रवाद ९ प्रत्याख्यान प्रवाद १० विद्याप्रवाद ११ कल्याणप्रवाद १२ प्राणावाय १३ क्रियाविशाल १४ लोकविन्दुसार.

ये पूर्व कितनी मषीके प्रमाणसे लिखेजासक्ते हैं सो नीचे मुजब समझना—

१ उत्पादपूर्व एक हाथी प्रमाण मषी पुंजसे लिखा जा सकता है, २ अग्रायणीय दो हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ३ वीर्य प्रवाद चार हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ४ अस्तिनास्तिप्रवाद आठ हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ५ ज्ञानप्रवाद सोलह हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ६ सत्यप्रवाद बत्तीस हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ७ आत्मप्रवाद चौंसठ हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ८ कर्मप्रवाद एकसौ अट्ठाईस हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ९ प्रत्याख्यान प्रवाद दोसौ छप्पन हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, १० विद्याप्रवाद पाँचसौ बारह हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, ११ कल्याण प्रवाद एक हजार चौबीस हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, १२ प्राणावाय दो हजार अड़तालीस हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, १३ क्रियाविशाल चार हजार छानवें हाथी प्रमाण मषी पुंजसे, १४ लोकबिंदुसार आठ हजार एकसौ बाणवें हाथी प्रमाण मषी पुंजसे लिखा जा सकता है। इस प्रकार चौदह पूर्व मिलकर १६३८३ हाथी प्रमाण संख्याके मषी पुंजसे लिखे जासक्ते हैं।

ये सब भेद पाठकोंके जाननेके लिएही लिखे गये हैं वरना यहाँपर कोई आवश्यक्ता नहींथी। गुरु महाराजके पास जितना दृष्टिवाद था आर्यरक्षितने थोड़ेही दिनोंमें पढ़लिया। पारन्तु पढ़नेसे तृप्ति नहीं हुई, बल्कि पढ़नेमें विशेष प्रीति बढ़ती

है। एक दिन आर्यरक्षितने वृद्ध साधुओंसे सुनाकि आज दशपूर्व की विद्या श्री वज्रस्वामीके पास है और उन्हों की पाठन शैली भी बड़ी ही प्रशस्त है। उस समय श्री वज्रस्वामी उज्जैनी नगरीमें विराजमानथे।

आर्यरक्षितको अभीतक पढ़नेके ऊपर अत्यंत प्रीतिथी। अतएव गुरुमहाराजकी आज्ञा लेकर श्री वज्रस्वामीके पास उज्जैनीको गये। उसवक्त श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजभी उज्जैनीमेंहीथे।

आर्यरक्षित प्रथम श्री भद्रगुप्ताचार्य महाराजके ही उपाश्रयमें चलेगये। आचार्य महाराजनेभी श्री आर्यरक्षितको पैछानकर बड़े स्नेह पूर्वक स्वागत किया और कहा कि वत्स! तुझे धन्य है और तू कृतार्थ है, जो तूने ब्राह्मण्यको त्यागकर श्रामण्यको ग्रहण किया। स्वच्छाशय! जो तू इस अवसरपे आ पहुँचा सो बाड़ अच्छा हुआ क्योंकि मेरा आयु अब बहुत अल्प रहगया है इसलिए मैं अनशन करना चाहता हूँ। अतएव तू मेरा निर्यामक बन। आर्यरक्षितने आचार्य महाराजका वचन विनय पूर्वक स्वीकार करलिया। आचार्य महाराज अनशन करते समय आर्यरक्षितसे बोले कि वत्स! तूने वज्रर्षिके साथ एक उपाश्रयमें कभी भी न रहना, क्योंकि जो मनुष्य सोपक्रम आयुवाला वज्रर्षिके साथ एक रात्रिभी निवास करेगा वह निश्चय करके उनके साथ ही काल धर्मको प्राप्त होगा। अतएव तूने [redacted] वसति (उपाश्रय) में रहकर पढ़ना। आर्यरक्षितने कहा भगवन्! [redacted]ही करूँगा. यों कहकर और आचार्य महाराजको निर्यापणा [redacted]ाकर आर्यरक्षित श्री वज्रस्वामीके पास चल पड़े। आर्यरक्षित [redacted] दिन रातको नगरीसे बाहर ही रहे। इधर श्री वज्रस्वामीने

उसी रात्रिमें यह स्वप्न देखा कि दूधसे भराहुआ पात्र हमसे पड़ताहुआ किसी एक आगन्तुक पुरुषने पी लिया और थोड़ासा हमारे पास रहगया। यह स्वप्न श्री वज्रस्वामीने प्रातःकाल अपने शिष्योंसे कह दिया और इसका अर्थभी इस तरह कह सुनाया कि मुनियों! आज कोई पढ़नेवाला अतिथि आयगा और हमसे बहुत श्रुत ग्रहण करेगा। किन्तु कुछ पूर्वका अवशेष भाग हमारे ही पास रहेगा। इतनेमें ही आर्यरक्षित श्री वज्रस्वामीके उपाश्रयमें आ पधारे।

आर्यरक्षितने श्री वज्रस्वामीको द्वादशावर्त वन्दनसे नमस्कार किया तत्पश्चात् श्री वज्रस्वामीने स्वागत पूर्वक पूछा कि भद्र! तुम्हारा आगमन कहाँसे हुआ? आर्यरक्षित सविनय बोले—भगवन्! मैं श्री तोसलिपुत्राचार्य महाराजकी सेवामें से यहाँ आया हूँ। श्री वज्र स्वामीने कहा क्या तुम्हारा नाम आर्यरक्षित है? आर्यरक्षित—भगवन्! ऐसेही है? श्री वज्रस्वामीने आर्यरक्षितको पैछानकर प्रीति पूर्वक कहा कि मुने! तूने उतारा कहाँ किया है? आर्यरक्षित—भगवन्! मैं नगरसे बाहर उतराहूँ, श्री वज्रस्वामी—महात्मन्! नगरसे बाहर रहकर पढ़ना किसतरह होगा? आर्यरक्षित हाथजोड़कर—भगवन्! भिन्न उपाश्रयमें मैं श्री भद्रगुप्ताचार्यमहाराजकी आज्ञासे उतराहूँ वरना आपके चरणोंको छोड़कर मुझे भिन्न स्थानपर उतरने में और कोई कारण नहीं। श्री वज्रस्वामी श्रुतज्ञानके उपयोगसे जानकर बोले कि बेशक जो उनवृद्धोंने कहा है सो सत्य है अन्यथा नहीं। अब श्री वज्रस्वामी भिन्न उपाश्रयमें रहे हुए आर्यरक्षितको प्रतिदिन पूर्वोंकी वांचना देने लगे और उनके विनयादि गुणोंसे रंजित होकर बड़ी प्रीतिसे पढ़ाते हैं। श्री आर्य-

रक्षित की बुद्धि बड़ी ही अगाधथी अतएव वे थोड़े ही समय में नव पूर्व पढ़ गये और दशवाँ पूर्व पढ़ना प्रारंभ करदिया। एकदिन गुरुमहाराजने आर्यरक्षितसे कहा–भद्र! प्रथम दशवें पूर्वके यमक पढ़लो, क्योंकि इनके पढ़नेसे दशवें पूर्वमें सुगमतासे प्रवेश होता है। यमक–ये परिकर्मके आलावे होते हैं, जिस परिकर्मका नाम हम पहलेही दृष्टिवादके पाँच भेदोंमें प्रथम भेद कह गये हैं। इन यमकों का विषय बहुत ही विषम होता है और दशम पूर्व पढ़ने वालेको ये प्रथम ही पढ़ने पड़ते हैं। आर्यरक्षितनेभी गुरुमहाराजकी आज्ञा विनयपूर्वक स्वीकारकर यमक पढ़ने प्रारंभ कर दिये। इधरसे जब आर्यरक्षितको घरसे गये बहुत दिन होगये तब उनके माता पिताने आर्यरक्षितको यह समाचार भेजा कि वत्स! तुम्हारेको बहुत समय होगया घरसे गये, जो तुम अभीतकभी घर नहीं आते तो क्या हमको भूल गये? हमतो यह आशा करते हैं कि हमारे कुलका उद्योत तुम्ही करोगे, तुम्हारे विना हम यहाँ पर सब कुछ अन्धकारमय देखते हैं। अतएव यहाँ आकर हमारे मनरूपी अम्भोजको प्रफूलित करो। इसतरह मातापिताके संदेसे आने परभी पनढ़े में लीन हुए हुए आर्यरक्षित वहाँसे न गये। आर्यरक्षितके न आने पर थोड़े दिन पीछे उनके मातापिताने आर्यरक्षितका अतिस्नेही जो छोटाभाई फल्गुरक्षित था उसको शिक्षा देकर भेजा कि जा तेरे स्नेहसे आर्यरक्षित आजायगा। फल्गुरक्षित शीघ्रही वहाँ जाकर गुरुमहाराजको विनयपूर्वक वन्दन नमस्कार करके आर्यरक्षितसे बोला कि भाई! आप कुटुंबियोंके ऊपर ऐसे कठोर हृदय वाले क्यों बनगये जोकि बुलानेसेभी नहीं आते और अपनी राजीखुशीकाभी समाचार नहीं भेजते। भाई! मैं जानताहूँ कि आपने वैराग्यरूपी कुहाड़ेसे प्रेमबंधनको छेदनकर

दियाहै तथापि आपके अन्दर कारूण्य भावतो है। अतएव भगवन् ! शोकरूप कीचड़में फसे हुए अपने बन्धुवर्गका वहाँपर पधारके उद्धार करो। इसतरह अपने छोटे भाईके उपरोधसे " श्री आर्यरक्षित ने भगवान वज्रस्वामी से वन्दन पूर्वक जानेके लिए पूछा, गुरुमहाराजने उन्हें पढ़नेके लिए प्रेरणाकी, " आर्यरक्षित " गुरुमहाराजकी शिक्षासे विहारका खयाल छोड़कर फिर पढ़ने में लग गये। अब " फलगुरक्षित " अपना आना निष्फल समझकर एकदिन बनावटी बहानेसे श्री आर्यरक्षितको कहने लगा कि भाई ! आपके जो मित्र जनथे अबवे सबही आपके आनेकी वाट देख रहे हैं; क्योंकि उन सबका विचार दीक्षा लेनेका है इस लिए वे आपकी ऐसी प्रतिक्षाकर रहे हैं जैसे चातक मेघकी करता है, अतएव भाई ! आप वहाँ पधारके उन अपने गोत्रियों को संसार–समुद्रसे तारनेवाली दीक्षा क्यों नहीं देते ?

अपने छोटे भाईके ये वाक्य सुनकर श्री आर्यरक्षितने कहा कि यदि यह बात सत्य है तो पहले तू दीक्षा ग्रहण करले। श्रद्धारूप जलसे धोये हुवे मनवाले फलगुरक्षितने कहा कि यदि आपका ऐसाही विचार है तो खुशीसे मुझे दीक्षा देदीजिये, क्यों कि ऐसा कौन है जो अमृतसे परांमुख हो । श्री आर्यरक्षितने प्रीति पूर्वक अपने लघु भ्राता फलगुरक्षितको दीक्षा देदी। दीक्षा लेकर फल्गु रक्षितने फिर एक दिन श्री आर्यरक्षितको विहारकेलिए प्रेरणा की।इस समय श्री आर्यरक्षितने दशम पूर्वके संपूर्ण यमक पढ़ लिये थे। फलगुरक्षितकी प्रेरणासे श्री आर्यरक्षितने गुरुमहाराजसे विहार करनेके लिये पूछा। गुरुमहाराजने भी पूर्ववत् निषेध किया और पढ़नेके लिए उत्साह देने लगे। इसवक्त श्री आर्यरक्षितका उत्साह पनढ़ेसे बिलकुल भग्नहो गयाथा और स्वजनोंसे मिलनेकी उत्कंठा

बढ़ रहीथी। अतएव वे खेद पूर्वक मनमें विचार करने लगे कि यदि मातापिता तथा स्वजन संबंधियोंके ऐसे अत्यंत आग्रह होने पर भी न जाऊँ तोभी ठीक नहीं और यदि गुरुमहाराजकी आज्ञा भंग होवे तो यह उससेभी ठीक नहीं, गुरुआज्ञाभंगसे साधु लोग वैसेही डरते हैं जैसेकि मृग सिकारीसे। एकदिन श्री आर्यरक्षित गुरुमहाराजको नमस्कार करके विनयपूर्वक बोले कि भगवन्! दशवें पूर्वको मैंने कितना पढ़लिया? और कितना बाकी रहा है? गुरुमहाराज स्मितपूर्वक कहने लगे भद्र! दशवाँ पूर्व अभीतक तुमने बिन्दुमात्र पढ़ा है और समुद्रके तुल्य अभी बाकी रहा है। गुरुमहाराजका यह वचन सुनकर श्री आर्यरक्षित हाथ जोकड़र बोले–भगवन्! अबतो पढ़नेसे मेरा चित्त खिन्नहो गया, मैं आगे पढने में समर्थ नहीं। आर्यरक्षितका चित्त खिन्न देखके गुरुमहाराज बोले कि धीमन्! शेष श्रुत तुम्हे जलदी ही आ-जायगा, तुम खेद मतकरो। गुरुमहाराजके प्रीतिग र्भितवचन सुनकर भक्तिमान् श्री आर्यरक्षित उत्साह हीन पूर्ववत् गुरुमहाराजकी आज्ञासे पुनःपढ़नेमें प्रवृत्त होगये।

परन्तु अब स्वजनोंसे मिलनेका उत्साह निहायतही बढ़ रहाथा और पढ़नेसे मन कंटाल गयाथा। अतएव फिर एकदिन श्री आर्यरक्षित फलगुरक्षितको साथमें लेकर गुरुमहाराजके पास गये और दशपुर नगरको जानेकी आज्ञा मांगी। गुरुमहाराजने विचार किया कि इस तरह उत्साह चढ़ानेपर भी यह जानेकीही उत्कंठा वाला क्यों है। यह विचार कर भगवान श्री वज्रस्वामीने श्रुत ज्ञानमें उपयोग दिया। ज्ञान बलसे जान लिया कि आर्य-रक्षित यहाँसे गये बाद फिर यहाँ न आयगा और हमारी आयुष्य भी अब अल्प रह गई है, अतएव शेष दशम पूर्व हमारे

पास ही रहा। गुरुमहाराजने आर्यरक्षितको विहारकी आज्ञा देदी। श्री आर्यराक्षित भी अपने लघुभ्राता फलगुरक्षितको साथ लेकर दशपुर नगरमें आ पहुँचे। श्रीआर्यरक्षितका नगरमें आना सुनके वहाँका भूपति तथा आर्यरक्षितके माता पिता, स्वजन संबंधि लोग सबही वन्दन करनेको आये और विधि पूर्वक नमस्कार करके आन्दके अश्रु बहाते हुए योग्य स्थान पर बैठ गये। करूणाके समुद्र श्री आर्यराक्षितने भी उन्हों पर अनुग्रह करके धर्म देशन प्रारंभ करदी। अमृतकी वृष्टिके समान धर्मदेशनाको सुनकर नगरनिवासी लोग बडे विस्मित हुवे और उनके उपदेशसे राजा तथा और भी बहुतसे भव्यजीवोंने जैनधर्म अंगीकार करलिया। श्री आर्यरक्षितके पिता सोमदेव तथा माता रूद्र सोमा आदि बहुतसे स्वजनोंने इस असार संसारसे विरक्त होकर जैन मतकी दीक्षा ग्रहण की। इधरसे भगवान श्री वज्रस्वामी पृथिवीतलमें विहार करते हुए एकदिन दक्षिण देश में पधारे। दाक्षिणात्य लोग श्री वज्रस्वामीको देखकर ऐसे आनन्दित हुए जैसे वर्षाकालके मेघको देखकर मयूर होते हैं। श्री वज्रस्वामी भी भव्यजीवरूप कैरवों को चंद्रमाके समान और अज्ञानतिमिरको सूर्यके समान जैन तत्वको प्रकाशित करते हुए तत्रस्थजनोंके चित्तको आनान्दित करते हैं। एकदिन श्री वज्रस्वामीको श्लेशम बहुत होगया, अतएव उन्होंने एक साधुसे शूँठकी गाँठ मंगवाई और विचार किया कि आहारकरके पीछे खालेंगे। यह विचारकर शूँठकी गाँठ कानमें रखली, आहार करने पर स्वाध्याय ध्यानमें लीन होनेसे उस शूँठकी गाँठको खाना भूलगये और वह उसी तरहसे कानमें रक्खी रही। शामको प्रतिक्रमणमें मुखवास्त्रिकाकी प्रतिलेखनाकरने के समय वह शूँठकी गाँठ कानसे जमीनपर गिरपडी। उसके

पड़नेकी आवाज होनेसे श्री वज्रस्वामीको याद आगई, उसवक्त श्री वज्रस्वामी विचार करनेलगे-अहो! धिक्कारहो इसमेरे प्रमादको, क्यों कि प्रमाद में संमय नहीं रहता और निष्कलंक संयमके विना मनुष्य जन्म तथा जीवन व्यर्थ है, अतएव अबतो देहका त्याग करनाही उचित है। श्री वज्रस्वामीने अनशनकरनेका निश्चय करलिया, उस समय चारों तर्फसे बारह वर्षका दुर्भिक्ष आपड़ाथा अतः अन्न मिलना बड़ा दुर्लभ होगया। एकदिन श्री बज्रस्वामी अपने बड़े शिष्य श्री वज्रसेन से कहने लगे कि मुने! जिसदिन तुम लक्षरुप्य मूल्यवाले भोजनसे भिक्षा ग्रहण करो उससे अगले दिनही सुभिक्ष समझ लेना। इस तरह कहकर श्री वज्रस्वामीने श्री वज्रसेनको अन्यत्र विहार करनके लिए आज्ञा देदी श्री। वज्रसेन महाराजभी गुरुमहाराजकी आज्ञा पाकर और कितनेएक साधु समुदायको साथ लेकर अवन्ती पुरीकी ओर विहारकर गये। इधर श्री वज्रस्वामीके पास रहनेवाले साधु दुर्भिक्षके प्रभावसे गाँवमें भ्रमण करते हुएभी भिक्षा प्राप्त नही करते और आहारके न प्राप्त होनेसे साधु ओंके ज्ञान ध्यानमेंभी शिथलता होने लगी। गुरुमहाराज यह हालत देखकर अपनी विद्याके बलसे साधुओंको प्रतिदिन आहार देनेलगे। कितनेएक दिन बीत जाने पर एकदिन-करुणासागर श्री वज्रस्वामी भगवान साधुओंसे बोले कि मुनियो! यदि इस विद्याके बलसे मैं तुम्हें बारह वर्षतक भी भोजन दूँ तोभी तुम्हारे संयमको किसी प्रकारकी बाधा नहीं परन्तु अब इस शरीरका क्या पोषण करना, अबतो अनशन करना यही श्रेय है। गुरुमहाराजके ये वचन सुनकर साधुलोग बोले कि भगवन्! हम स्वयंही इस कामको इच्छते हैं अतएव आप कृपा करें जिससे हम आहार और शरीरको त्यागकर अनशन करें।

इस तरह साधुओंका अभिप्राय जानकर। जिस तरह संध्या समय सूर्य भगवान अस्ताचल तर्फजाता है वैसे ही भगवान श्री वज्रस्वामी सब मुनियोंको साथ लेकर नगरके समीप जो पर्वत था उधर चल दिये। उन साधुओंके बीचमें एक क्षुल्लक साधुभी था' जब श्री वज्रस्वामी सब साधुओंको साथ लेकर अनशन करनेको चले तब उस क्षुल्लक (छोटा) साधुको उन्होंने बहुत ही निवारण किया परन्तु वह साथ चलनेसे न माना, इसलिए आचार्य महाराजने उसे किसी एक बहानेसे नगरमें भेज दिया था और आप सर्व साधुओंको साथ लेकर पर्वत पे चलेगयेथे। क्षुल्लक साधुने उपाश्रयमें आकर देखातो गुरु महाराज नहीं। वह समझ गया कि गुरुमहाराज अनशन करनेके लिए सब साधुओंको साथ लेकर पर्वत ऊपर जा चढ़े, इसलिए वहभी वहाँ ही जाने के लिए चलपड़ा, परन्तु रास्तेमें जाते हुए उसने विचार किया कि यदि गुरुमहाराजके पास जाऊँगा तो उनको अप्रीति होगी, क्योंकि उन्होंने मुझे पहले ही निषेध कियाथा और इसी लिए अमुक बहानेसे गाँवमें भेजाथा। अतएव उनकेपास न जाकर पर्वतके नीचे ही मैं भी अनशन करलूँ। यह विचार करके उस क्षुल्लक साधुने पर्वतके नीचेही चारों ही प्रकारके आहारका परित्याग करके तथा अपने शरीरको बुसराके एक शिलाके ऊपर अनशन करलिया। मध्यान कालके तापसे शिलाके तपजाने पर उस सुकोमल क्षुल्लक साधुका शरीर ऐसे पिगल गया जैसे नवनीत घृतका पिंड अग्निसे ढलक जाता है। परन्तु शुभ ध्यानमें स्थित रहकर उस शक्तिमान् बालर्षिने अपने शरीरको त्यागकर देवलोकमें स्थान प्राप्त करलिया। उस साधुका स्वर्गवास होनेपर पर्वतके समीपवर्तिदेवताओंने उसके शरीरकी

पूजा महिमा की। आकाशसे देवताओंको उतरते देखकर साधुओंने श्री वज्रस्वामीसे पूछा कि भगवन्! ये देवता स्वर्गसे क्यों आरहे हैं?। श्रीवज्रस्वामीने अपने श्रुतज्ञानमें उपयोग देकर कहाकि मुनियो! महामति उस क्षुल्लक साधुने अपना कार्य सिद्ध करलिया और उसके शरीरकी महिमा करनेके लिए स्वर्गसे ये देवता आरहे हैं। गुरुमहाराजसे यह समाचार सुनकर साधुओंने विचार किया कि यदि उस बालर्षिनेभी अपना कार्य साधलिया तो फिर हमवृद्ध क्यों न साधें। यह विचारकर अनशन करने लगे। इतनेमें ही उस पर्वतके अधिष्ठाता देवने श्रावकका वेश धारणकर और प्रत्यक्ष होके कहाकि भगवन्! आप महात्माओंके आज पारणा है अतएव आप मुझसे शर्कराक्षोद मोदक और प्रासुकपानी ग्रहण करो। साधुओंने विचार किया कि निश्चय यह कोई इस पर्वतका अधिष्ठाता देव है और हमारे यहाँ रहनेसे इसे अप्रीति होती है। क्योंकि श्रावक साधुको अनशन करते समय कभी भी ऐसी विज्ञप्ति नहीं करे। अतएव यहाँ रहना उचित नहीं। यह विचारकर साधु दूसरे पर्वतपर चले गये और वहाँ जाकर उस पर्वतके अधिष्ठाता देवका मनमें चिंतवनकरके कायोत्सर्ग किया। देवभी प्रत्यक्ष होकर और भक्तिपूर्वक नमस्कारकरके बोला कि भगवन्! यह आपकाही अनुग्रह है आपकी बड़ी कृपा हुई जो आप यहाँ पधारे, क्योंकि मारवाड़ देशकी भूमिमें कल्पवृक्षके समान आप जैसे महात्माका यहाँपर पधारना भी दुष्कर है। उस भूमिके अधिष्ठाता देवका यह वचन सुनकर उन समस्त साधुओंने श्रीवज्रस्वामीके साथ चारोंही प्रकारके आहारका त्यागकरके और अपने शरीरकोभी बुसराकर अनशनकरके चिरकालके लिए स्वर्गमें स्थिति प्राप्त करली।

इधर शक्रेन्द्रने अवधिज्ञानसे भगवान श्रीवज्रस्वामीका निर्वाण जानकर कितनेएक देवोंके साथ वहाँ आकर श्रीवज्रस्वामीके तथा अन्य साधुओंके शरीरकी आनन्दपूर्वक पूजा की और रथमें बैठकर उस पर्वतकी तीन प्रदक्षिणा दीं। उस दिनसे उस पर्वतका नाम रथावर्त पर्वत पड़गया और आज तकभी इसी नामसे प्रसिद्ध है। दुष्कर्मरूप पर्वतको चूर्ण करनेमें वज्रके समान भगवान श्री वज्रस्वामीके निर्वाण होनेपर दशमपूर्व तथा चतुर्थसंहनन, इन दो वस्तुओंका विच्छेद होगया। अब श्री वज्रस्वामीके शिष्य श्री वज्रसेन पृथिवीतलमें विहार करते हुए एक दिन सोपारक नगरमें आये। उस नगरमें यथार्थ नामको धारण करनेवाला जितशत्रु नामका राजा राज्य करता था और समस्त गुणोंको धारण करनेवाली धारणी नामकी उसकी पट्टरानी थी। उसी नगरमें विनयादि गुणसंपन्न और जिनधर्ममें रक्त एक जिनदत्त नामका श्रावक रहता था। ईश्वरी नामकी उसकी भार्या थी, वह पतिव्रता धर्ममें तो मानो दूसरी ईश्वरीही थी। उस समय दुर्भिक्षसे पीडित हुए समस्तजन जलहीन मीनके समान आकुल व्याकुल होरहे थे। एक दिन ईश्वरी अपने कुटुंबियोंसे कहने लगी कि देखो आजतक अपने सुखसे जीवन व्यतीत किया है और अब अन्नके अप्राप्त होनेसे दुःखित होकर कबतक जीवेंगे। अब कष्टके जीनेसे न जीनाही श्रेय है। मुझे एक उपाय सूझता है. यदि सबकी राय हो तो आज अच्छी तरहसे भोजन पकाके उसमें विष डालदें और उस विषमय भोजनको खाकर पंचपरमेष्ठी नमस्कारको स्मरण करते हुए समाधीपूर्वक अनशनकरके दुःखके आधारभूत इस देहको त्याग दें। ईश्वरीका यह वचन सुनकर समस्त कुटुंबिजनोंने यह बात मंजूर करली और विचार करने

लगे कि एक दिन न एक दिन मरना तो अवश्यही है, उसमेंभी यदि समाधिपूर्वक मरण होवे तो वह श्लाघ्यनीय होता है, क्योंकि मनुष्यको मरते समय जैसी मति होती है वैसी ही उसकी गति होती है, इस लिए अब यही उचित है। यह विचारकरके शीघ्रही भोजन तैयार कराया। उस दिन उस भोजनके तैयार होनेमें एकलक्ष मूल्य लगाथा। अभी विष गेरनेकी तैयारीही थी, इतनेमेंही दुर्भिक्ष रोगसे पीड़ितजनोंको धन्वंतरीके समान श्रीवज्रसेन महामुनि वहाँपर आ पधारे। श्रीवज्रसेन महामुनिको देखकर वह सुशीला ईश्वरी आनन्द पूर्वक विचार करने लगी कि ऐसे अवसर पे ऐसे महात्माओंका आना यह कोई साधारण बात नहीं, अतएव इन्होंके पात्रमें आहार देकर हम अपने मनुष्यजन्मका तो फल प्राप्त करें। क्योंकि ऐसे पात्रका योग बड़ेही पुन्यसे प्राप्त होता है। यह विचारकर अति हर्षपूर्वक ईश्वरीने श्रीवज्रसेन महाराजके पात्रमें दान दिया और उस लक्षमूल्य भोजनका वृतान्त तथा अपना अभिप्राय श्री वज्रसेनगुरुके प्रति कह सुनाया, करुणा समुद्र भगवान श्री वज्रसेन बोले–भद्रे ! ऐसा मत करो, कल प्रातःकालही सुभिक्ष होनेवाला है इसमें कुछभी संशय नहीं। गुरु महाराजका यह वचन सुनकर ईश्वरी कहने लगी–भगवन् ! यह आपने अपनेही ज्ञानसे जाना है या अन्य किसीसे ? श्री वज्रसेन महामुनि बोले–भद्रे ! मुझे श्री वज्रस्वामी गुरुमहाराजने कहा था कि जब तुम लाख रुपयेके मूल्यवाले भोजनसे आहार ग्रहण करोगे तब उससे अगले दिनही सुभिक्ष होगा। कानोंको अमृतके समान गुरुमहाराजका यह वचन सुनकर हृष्ट चित्ता ईश्वरी तथा उसके स्वजनोंने वह दुर्भिक्षका दिन क्षणमात्रवत् व्यतीत करादिया। जैसे समस्त किरणोंको साथ लेकर अन्धकारका नाश करता हुआ प्रातः

कालमें सूर्यमंडल आता है वैसेही प्रातःकाल होनेपर किसी एक द्वीपसे अन्नसे भरे हुए जहाज आपहुँचे। अब सुभिक्ष के होनेपर वहाँके लोग बड़ेही आनान्दित हुए और जैनधर्मकी बड़ीही महिमा हुई। श्री वज्रसेनस्वामीभी कुछ दिनों तक वहाँही रहे। जिनदत्त और ईश्वरीने इस विनश्वर संसारकी असारताको समझकर बहुतसे कुटुंबियोंके साथ जिनेश्वर देवकी पूजाकरके तथा अर्थिजनोंको दान देकर श्री वज्रसेनस्वामीके पास बड़े भारी उत्सवसे इहलोक तथा परलोकमें हितके करनेवाली दीक्षा ग्रहण करली और दुष्तप तपोंको तपकर निरतिचार चारित्र पालकर अपनी आत्माका कल्याण करलिया। इस तरह श्री वज्रस्वामीके शिष्य प्रशिष्योंसे उनका वंश बड़की शाखाओंके समान चारों दिशाओंमें फैला और आजतकभी तमाम जैनसाधु श्री वज्रस्वामीकीही शाखा मानते हैं।

ये केचिन्नयना तिथित्व मगमन्ये वा श्रुते गोचरं, वंशास्तेषु तनुत्व मग्रमभजन्नूनं पुरः स्थूलताम्। नव्यो सौ दशपूर्विणो मुनिपतेः श्रीवज्रसूरेर्गुरो, र्वंशोयः प्रथमं दधाति तनुतां स्फातिं [illegible]रस्तात्पुनः ॥ १ ॥

अपश्चिमी दशपूर्वधर श्री वज्रस्वामीका यह परमपवित्र सच्चरित्र हिन्दीभाषामें आज दीवालीके दिन समाप्त करता हुआ मैं अपने पाठकोंसे रुकसद होता हूँ।

॥ समाप्तोयंग्रन्थः ॥

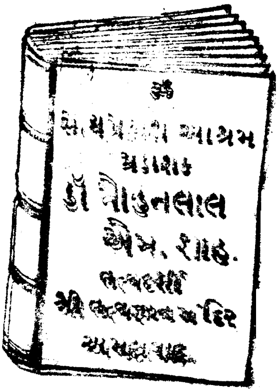
ૐ
આશ્રમ
પ્રકાશક
એમ. શાહ.